अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-41, अंक-18, 1-15 मई, 2018

उन्नाव की घृणास्पद घटना तथा साम्प्रदायिकता के विरुद्ध देशभर में उपवास एवं जुलूस

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 41, अंक : 18, 1-15 मई, 2018

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
फोन : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : ssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. कैशलेस इंडिया का तात्पर्य... 2
2. भारत और उसका संदेश... 3
3. मैं जलियांवाला बाग हूं... 7
4. भारत की स्थिति को पुनर्परिभाषित... 8
5. मजूर-हुजूर का भेद... 10
6. चीन के बाद अब भारत में मजदूरों... 11
7. उर्वरता की हिंसक भूमि... 12
8. दांडी मार्च का विस्तार है जनांदोलन... 15
9. उपन्यास - 'बा'... 17
10. गतिविधियां एवं समाचार... 19
11. कविताएं... 20

संपादकीय

कैशलेस इण्डिया का तात्पर्य

नकदी का महत्त्व वैश्विक अर्थव्यवस्था में जो भी हो, भारत देश जो मूलतः गांव का देश है और जहां देश की 70 प्रतिशत आबादी निवास करती है और जो छोटे काश्तकार, मजदूर अशिक्षित और निर्धन हैं, वे अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नकदी पर ही निर्भर हैं। ग्रामीण जीवन में इस सत्य को यदि कोई नकारता हो, तो संदेह होना लाजिमी है कि वह गांव की जीवन व्यवस्था को नहीं समझता और उसे छिन्न-भिन्न करना चाहता है। या फिर अत्यन्त छोटे काश्तकार कृषि उत्पादन बेचकर नमक-हल्दी लाने वाले आमजन को और भी कष्टकर जीवन की ओर धकेलना इसे कहा जायेगा।

नोटबंदी के दौरान हमने कतारों में लगातार खड़े रहने और अपने जीवन को उत्सर्ग करते लोगों को भी देखा है। कुछ समय से बैंक के एटीएम भी कैशलेस हो गये। एक शहर में अपने निकट के एटीएम में यदि पैसे नहीं हैं तो लोगों को पूरे शहर एटीएम-दर-एटीएम चक्कर लगाने की जरूरत होती है। वैसे भी यह स्थिति प्रायः हर शहर की है। ग्रामीण भारत तो कैशलेस इंडिया से अलग है, जहां किसान-मजदूर रहते हैं, लेकिन उसकी पीड़ा शहर-इंडिया तक नहीं पहुंचती। इनमें ग्रामीण जीवनशैली की कोई जानकारी तक नहीं होती, इसलिए परस्पर भावनात्मक संबंध भी मृतप्रायः है। किसानों-मजदूरों का भारत, जहां किसान आत्महत्या तक करने को मजबूर हैं, उसकी सुध लेने वाला कौन है! आलू, टमाटर जैसे फसल की कीमत कैशलेस इंडिया द्वारा निर्धारित की जाती है और दाम गिरने से किसान इन फसलों को सड़कों और खेतों पर फेंकने के लिए मजबूर होते हैं। स्वाभाविक है कि जिन फसलों को किसान एक लंबे इंतजार के बाद तैयार करता है, अपना श्रम एवं धन ऋण लेकर भी लगाता है और उसे मंडियों तक ले जाने का भाड़ा भी वापस होना मुश्किल होता है, तो वह मरे नहीं तो क्या करे? कॉरपोरेट ऋण की माफी जब आर्थिक विकास का हिस्सा बन जाये और किसानों की कर्जमाफी ऋण अनुशासनहीनता, तो भारत में किसानी भला कैसे हो सकती है? यदि किसानी ही न हो तो किसान कैसे बचे? और, जब किसान ही न बचे तो फिर गांधी का गांव भी कैसे बचे, यही यक्ष प्रश्न आज भारत के सामने है; भले ही यह प्रश्न कॉरपोरेट इंडिया के सामने न हो। किसानी विफल दिखाकर ये कॉरपोरेट ऐसा लगता है कि भारतीय किसान को किसानी भी सिखायेंगे।

मुझे याद है कि कभी तत्कालीन प्रधानमंत्री के आर्थिक सलाहकार श्री रंगराजन ने खाद्य पदार्थों की आसमान छूती कीमत को नियंत्रित करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक को बाजार में नकदी की उपलब्धता सीमित करने की सलाह दी थी। इसके पीछे मंशा यह थी कि रिजर्व बैंक अपने अधिकार का इस्तेमाल करके बाजार से वह अतिरिक्त पैसा खींच ले आये, जिस कारण मांग बढ़ रही थी और मांग की पूर्ति में दाम बढ़ रहे थे। यानि कि अरबों-खरबों सार्वजनिक धन डालकर बैंकों, बीमा कंपनियों और अन्य आर्थिक धंधों में लगे लोगों को दिवालिया होने से बचाया जा सके। चाहे तत्कालीन सरकार हो या वर्तमान सरकार, सबकी मंशा एक ही है।

धीरे-धीरे हालात सुधरते हैं, लेकिन इस सुधार के मायने क्या हैं? यही कि बाजार में नोटों के खेल का शुरू होना ताकि जीवन की आवश्यक चीजें महंगी होने लगे। प्याज भी आमजन के हाथ से बाहर की चीज बन जाय। फिर शुरू होता है खेल, जिसमें सरकार एक अम्पायर की भूमिका में रहती है। केन्द्र सरकार महंगाई से पल्ला झाड़ती है और यह कहती है कि इसे रोकना राज्य सरकार का काम है। सवाल है, जब न महंगाई रोक सकते, न भ्रष्टाचार, न जमाखोरी या कालाबाजारी तो फिर सरकार अम्पायरिंग क्यों करती है? हवा में तलवार क्यों भांजती है?

यह कैशलेस इंडिया में 'कैशलेस' तो सिर्फ रह जाता है, छोटा किसान, दस्तकार, दुकानदार, भूमिहीन और मजदूर। अरबों-खरबों का बाजार तो मुट्ठीभर लोगों के हाथ में सीमित है, जिसपर इंडिया कैशलेस हो या भरा हुआ फर्क नहीं पड़ता, बल्कि यह कैशलेस व्यवस्था तो बड़ी कंपनियों के ही नियंत्रण में रहती है। स्पष्टतः सरकार की वर्तमान कैशलेस योजना भारत के धन को देशी-विदेशी कंपनियों को सौंपने की एक कवायद मात्र है। पूंजीवादी सरकारों और संस्थाओं को किसानी, किसान और गांव को आत्मनिर्भर होने से रोकना है, ताकि उनका शोषण जारी रहे। यह कैशलेस व्यवस्था ग्रामीण सहकार और आत्मनिर्भरता तोड़ने वाली व्यवस्था है। फिर सरकार से ही पूछा जाना चाहिए कि भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में जहां कैशलेस की एक परंपरागत व्यवस्था स्थापित थी उसे आपने क्यों तोड़ा है और इसके तात्पर्य क्या हैं?

ऐसी स्थिति में गरीब जनता को ही गरीबों का ख्याल करना होगा, जो दुःख भोग रहे हैं, तंगी के शिकार हैं, उनको गरीबी के अनुभव के कारण एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति रखनी होगी। अगर कुछ लोगों की ही आमदनी बढ़ रही है तो दूसरों की गरीबी बढ़ना लाजिमी है। अमीर लोग भी जब अधिक धन बटोरते हैं तो उसका भी परिणाम यही होता है। इसलिए जिसके पास जो कुछ है, थोड़ा या अधिक है उनका कर्तव्य है कि अपने से जो अधिक गरीब हैं, उनकी मदद करें। ऐसा हुए बिना समूचे समाज का हित संभव नहीं होगा। '1 मई श्रमिक दिवस' का भी यही संदेश है।

–अशोक मोती

भारत और उसका संदेश

❑ गांधी

भारत मेरे लिए दुनिया का सबसे प्यारा देश है, इसलिए नहीं कि वह मेरा देश है, लेकिन इसलिए कि मैंने इसमें उत्कृष्ट अच्छाई का दर्शन किया है। भारत की हर चीज मुझे आकर्षित करती है। सर्वोच्च आकांक्षाएं रखने वाले किसी व्यक्ति को अपने विकास के लिए जो कुछ चाहिए, वह सब उसे भारत में मिल सकता है।

भारत अपने मूल स्वरूप में 'कर्मभूमि' है, 'भोगभूमि' नहीं।

भारत दुनिया के उन इने-गिने देशों में से है, जिन्होंने अपनी अधिकांश पुरानी संस्थाओं को, यद्यपि उन पर अंध-विश्वास और भूल-भ्रांतियों की काई चढ़ गयी है, कायम रखा है। साथ ही वह अभी तक अंध-विश्वास और भूल-भ्रांतियों की इस काई को दूर करने की, और इस तरह अपना शुद्ध रूप प्रकट करने की, अपनी सहज क्षमता भी रखता है।

मैं भारत की भक्ति करता हूं, क्योंकि मेरे पास जो कुछ भी है, वह सब उसी का दिया हुआ है। मेरा पूरा विश्वास है कि उसके पास सारी दुनिया के लिए एक संदेश है। उसे यूरोप का अंधानुकरण नहीं करना है।

भारत की विशेषता : मेरा विश्वास है कि भारत का ध्येय दूसरे देशों के ध्येय से कुछ अलग है। भारत में ऐसी योग्यता है कि वह धर्म के क्षेत्र में दुनिया में सबसे बड़ा हो सकता है। भारत ने आत्मशुद्धि के लिए स्वेच्छापूर्वक जैसा प्रयत्न किया है, उसका दुनिया में कोई दूसरा उदाहरण नहीं है, वह दैवी हथियारों से लड़ा है और आज भी वह उन्हीं हथियारों से लड़ सकता है। दूसरे देश पशुबल के पुजारी रहे है।...भारत अपने आत्मबल से सबको जीत सकता है। इतिहास इस सचाई के चाहे जितने प्रमाण दे सकता है कि पशुबल आत्मबल की तुलना में कुछ नहीं है।

मैं यह सोचना पसंद करूंगा कि भारत अपनी अहिंसा के जरिए सारे विश्व के शांति के दूत का काम करे।...भारत का भविष्य पश्चिम के उस रक्त-रंजित मार्ग पर नहीं है, जिसपर चलते-चलते पश्चिम अब खुद थक गया है, उसका भविष्य तो सरल धार्मिक जीवन द्वारा प्राप्त शांति के अहिंसक रास्ते पर चलने में ही है। भारत के सामने इस समय अपनी आत्मा को खोने का खतरा उपस्थित है। और यह संभव नहीं है कि अपनी आत्मा को खोकर भी वह जीवित रह सके। इसलिए आलसी की तरह उसे लाचारी प्रकट करते हुए ऐसा नहीं कहना चाहिए कि 'पश्चिम की इस बाढ़ को रोकने योग्य शक्तिशाली तो उसे बनना ही होगा।...मैं भारत को स्वतंत्र और बलवान् बना हुआ देखना चाहता हूं, क्योंकि मैं चाहता हूं कि वह दुनिया के भले के लिए स्वेच्छापूर्वक अपनी पवित्र आहुति दे सके।

पश्चिम की नकल न करें : मैं यह मानने जितना नम्र तो हूं ही कि पश्चिम के पास बहुत-कुछ ऐसा है, जिसे हम उससे ले सकते हैं, पचा सकते हैं और लाभान्वित हो सकते हैं। ज्ञान किसी एक देश या जाति के एकाधिकार की वस्तु नहीं है। पाश्चात्य सभ्यता का मेरा विरोध असल में उस विचारहीन और विवेकहीन नकल का विरोध है, जो यह मानकर की जाती है कि एशिया-निवासी तो पश्चिम से आनेवाली हरएक चीज की नकल करने जितनी ही योग्यता रखते हैं।...मैं दृढ़तापूर्वक विश्वास करता हूं कि यदि भारत ने कष्ट और तपस्या की आग में से गुजरने जितना धीरज दिखाया और अपनी सभ्यता पर—जो अपूर्ण होते हुए भी अभी तक काल के प्रभाव को झेल सकी है—किसी भी दिशा से कोई अनुचित आक्रमण न होने दिया, तो वह दुनिया की शांति और ठोस प्रगति में स्थायी योगदान कर सकता है।

यूरोपीय सभ्यता बेशक यूरोप के निवासियों के लिए अनुकूल है, लेकिन यदि हमने उसकी नकल करने की कोशिश की, तो भारत के लिए उसका अर्थ अपना नाश कर लेना होगा। इसका यह मतलब नहीं कि उसमें जो कुछ अच्छा और हम पचा सकें ऐसा हो, उसे हम लें नहीं या पचायें नहीं। इसी तरह उसका यह मतलब भी नहीं कि उस सभ्यता में जो दोष घुस गये हैं, उन्हें यूरोबियनों को दूर नहीं करना पड़ेगा।

शारीरिक सुख-सुविधाओं की सतत खोज और उनकी संख्या में तेजी से हो रही वृद्धि ऐसा ही एक दोष है, और मैं साहसपूर्वक यह घोषणा करता हूं कि जिन सुख-सुविधाओं के वे गुलाम बनते जा रहे हैं, उनके बोझ से यदि उन्हें कुचल नहीं जाना है, तो यूरोपीय लोगों को अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ेगा। संभव है मेरा यह निष्कर्ष गलत हो, लेकिन यह मैं निश्चयपूर्वक जानता हूं कि भारत के लिए इस सुनहले माया-मृग के पीछे दौड़ने का अर्थ आत्मनाश के सिवा और कुछ न होगा। हमें अपने हृदयों पर एक पाश्चात्य तत्त्ववेत्ता का यह बोध वाक्य अंकित कर लेना चाहिए—'सादा जीवन और उच्च

चिन्तन'। आज तो यह निश्चित है कि हमारे लाखों-करोड़ों लोगों के लिए सुख-सुविधाओं वाला उच्च जीवन संभव नहीं है और हम मुट्ठीभर लोग, जो सामान्य जनता के लिए चिन्तन करने का दावा करते हैं, सुख-सुविधाओं वाले उच्च जीवन की निरर्थक उच्च चिन्तन को खोने की जोखिम उठा रहे हैं।

आत्मत्याग का आदर्श : मैंने भारत के समक्ष आत्मत्याग का पुराना आदर्श रखने का साहस किया है। सत्याग्रह और उसकी शाखाएं, असहयोग और सविनय कानून-भंग, तपस्या के ही दूसरे नाम हैं। इस हिंसामय जगत् में जिन्होंने अहिंसा का नियम ढूंढ़ निकाला, वे ऋषि न्यूटन से कहीं ज्यादा बड़े आविष्कारक थे। वे वेलिंग्टन से ज्यादा बड़े योद्धा थे।वे शस्त्रास्त्रों का उपयोग जानते थे और उन्हें उनकी व्यर्थता का निश्चय हो गया था। और तब उन्होंने हिंसा से ऊबी हुई दुनिया को सिखाया कि उसे अपनी मुक्ति का रास्ता हिंसा में नहीं, बल्कि अहिंसा में मिलेगा। अपने सक्रिय रूप में अहिंसा का अर्थ है—ज्ञानपूर्वक कष्ट सहना। उसका अर्थ अन्यायी की इच्छा के आगे दबकर घुटने टेकना नहीं है, उसका अर्थ यह नहीं कि अत्याचारी की इच्छा के खिलाफ अपनी आत्मा की सारी शक्ति लगा दी जाय। जीवन के इस नियम के अनुसार चलकर तो कोई अकेला आदमी भी अपने सम्मान, धर्म और आत्मा की रक्षा के लिए किसी अन्यायी साम्राज्य के संपूर्ण बल को चुनौती दे सकता है और इस तरह उस साम्राज्य के संपूर्ण बल को चुनौती दे सकता है और इस तरह उस साम्राज्य के नाश या सुधार की नींव रख सकता है। और इसलिए मैं भारत से अहिंसा को अपनाने के लिए कह रहा हूं तो उसका कारण यह नहीं है कि भारत कमजोर है। बल्कि मुझे उसके बल और उसकी वीरता का भान है, इसीलिए मैं यह चाहता हूं कि वह अहिंसा के रास्ते पर चले। उसे अपनी शक्ति को पहचानने के लिए शस्त्रास्त्रों की तालीम की जरूरत नहीं है। हमें उसी जरूरत इसलिए मालूम होती है कि हम समझते हें कि हम शरीर-मात्र हैं। मैं चाहता हूं कि भारत इस बात को पहचान ले कि वह शरीर नहीं, बल्कि अमर आत्मा है, जो हरएक शारीरिक कमजोरी के ऊपर उठ सकती है और सारी दुनिया के सम्मिलित शारीरिक बल को चुनौती दे सकती है।

भारत की हिन्दू-मुसलमान, सिख या गोरखा आदि सैनिक जातियों की वैयक्तिक वीरता और साहस से यह सिद्ध है कि भारतीय प्रजा कायर नहीं है। मेरा मतलब इतना ही है कि युद्ध और रक्तपात भारत को प्रिय नहीं है। और संभवतः दुनिया के भावी विकास में उसे कोई ऊंचा हिस्सा अदा करना है। यह तो समय ही बतायेगा कि उसका भविष्य क्या होने वाला है।

भारत के कभी किसी राष्ट्र के खिलाफ युद्ध नहीं चलाया। हां, शुद्ध आत्मरक्षा के लिए उसने आक्रमणकारियों के खिलाफ कभी-कभी विरोध का असफल या अधूरा संगठन अवश्य किया है। इसलिए उसे शांति की आकांक्षा पैदा करने की जरूरत नहीं है। शांति की आकांक्षा तो उसमें विपुल मात्रा में मौजूद ही है, भले वह इस बात को जाने या न जाने। शांति की वृद्धि के लिए उसे शांतिमय साधनों द्वारा अपने शोषण को रोकने की कोशिश करनी चाहिए, यानी उसे शांतिमय साधनों द्वारा अपनी स्वतंत्रता हासिल करनी चाहिए। अगर वह सफलतापूर्वक ऐसा कर सके, तो यह विश्वशांति की दिशा में किसी एक देश द्वारा दी जा सकने वाली उसकी ज्यादा-से-ज्यादा मदद होगी।

मुझसे कितने ही लोगों ने संदेह से सिर डुलाते हुए कहा है : 'लेकिन आप सामान्य जनता को अहिंसा नहीं सिखा सकते। अहिंसा का पालन केवल व्यक्ति ही कर सकते हैं और सो भी विरले व्यक्ति।' मेरी राय में यह धारणा एक मोटी भूल है। यदि मनुष्य-जाति आदतन अहिंसक न होती, तो उसने युगों पहले अपने हाथों अपना नाश कर लिया होता। लेकिन हिंसा और अहिंसा के पारस्परिक संघर्ष में अंत में अहिंसा ही सदा विजयी सिद्ध हुई है। सच तो यह है कि हमने राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लोगों में अहिंसा की शिक्षा के प्रसार की पूरी कोशिश करने जितना धीरज ही कभी प्रकट नहीं किया।

मेरे सपनों का भारत : मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें गरीब से गरीब लोग भी यह महसूस करेंगे कि वह उनका देश है—जिसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्त्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूंगा, जिसमें ऊंचे और नीचे वर्गों का भेद नहीं होगा और जिसमें विविध संप्रदायों में पूरा मेलजोल होगा। ऐसे भारत में अस्पृश्यता, शराब या और दूसरी नशीली चीजों के अभिशाप के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। उसमें स्त्रियों को वही अधिकार होंगे जो पुरुषों को। चूंकि शेष सारी दुनिया के साथ हमारा संबंध शांति का होगा, यानी न तो हम किसी का शोषण करेंगे और न किसी के द्वारा अपना शोषण होने देंगे, इसलिए हमारी सेना छोटी-से-छोटी होगी। ऐसे सब हितों का, जिनका करोड़ों मूक लोगों के हितों से कोई विरोध नहीं है, पूरा सम्मान किया जायेगा, फिर वे देशी हों या विदेशी। अपने लिए तो मैं यह भी कह सकता हूं कि मैं देशी और विदेशी के फर्क से नफरत करता हूं। यह है मेरे सपनों का भारत।...इससे भिन्न किसी चीज से मुझे संतोष नहीं होगा।

यदि भारत ने हिंसा को अपना धर्म स्वीकार कर लिया और यदि उस समय मैं जीवित रहा, तो मैं भारत में नहीं रहना चाहूंगा। तब यह मेरे मन में गर्व की भावना उत्पन्न नहीं करेगा। मेरा देश-प्रेम मेरे धर्म द्वारा नियंत्रित है। मैं भारत से उसी तरह बंधा हुआ हूं, जिस तरह कोई बालक अपनी मां की छाती से चिपटा रहता है, क्योंकि मैं

महसूस करता हूं कि वह मुझे मेरा आवश्यक आध्यात्मिक पोषण देता है। उसके वातावरण से मुझे अपनी उच्चतम आकांक्षाओं की पुकार का उत्तर मिलता है यदि किसी कारण मेरा यह विश्वास हिल जाय या चला जाय, तो मेरी दशा उस अनाथ जैसी होगी, जिसे अपना पालक पाने की आशा ही न रही हो।

यदि भारत तलवार की नीति अपनाये तो वह क्षणिक विजय पा सकता है। लेकिन तब भारत मेरे गर्व का विषय नहीं रहेगा।... भारत द्वारा तलवार का स्वीकार मेरी कसौटी की घड़ी होगी। मैं आशा करता हूं कि उस कसौटी पर मैं खरा उतरूंगा। मेरा धर्म भौगोलिक सीमाओं से मर्यादित नहीं है। यदि उसमें (धर्म में) मेरा जीवंत विश्वास है, तो वह मेरे भारत-प्रेम का भी अतिक्रमण कर जायेगा।

स्वराज्य का अर्थ

'स्वराज्य' एक पवित्र शब्द है। वह एक वैदिक शब्द है, जिसका अर्थ आत्म-शासन और आत्म-संयम है। अंग्रेजी शब्द 'इण्डिपेंडेंस' अकसर सब प्रकार की मर्यादाओं से मुक्त निरंकुश आजादी का या स्वच्छंदता का अर्थ देता है, वह अर्थ स्वराज्य शब्द में नहीं है।

स्वराज से मेरा अभिप्राय है—लोक-सम्मति के अनुसार होने वाला भारतवर्ष का शासन। लोक-सम्मति का निश्चय देश के बालिग लोगों की बड़ी-से-बड़ी तादाद के मत के जरिए से हो, फिर वे चाहे स्त्रियां हों या पुरुष, इसी देश के हों या इस देश में आकर बस गये हों। वे लोग ऐसे हों जिन्होंने अपने शारीरिक श्रम द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओं की सूची में अपना नाम लिखवा लिया हो।...सच्चा स्वराज्य थोड़े लोगों द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेने से नहीं, बल्कि जब सत्ता का दुरुपयोग होता हो तब सब लोगों द्वारा उसका प्रतिकार करने की क्षमता प्राप्त करके हासिल किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, स्वराज्य जनता में इस बात का ज्ञान पैदा करके प्राप्त किया जा सकता है कि सत्ता पर कब्जा करने और उसका नियमन करने की क्षमता उसमें है।

आखिर स्वराज्य निर्भर करता है हमारी आंतरिक शक्ति पर, बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयों से जूझने की हमारी ताकत पर। सच पूछो तो वह स्वराज्य, जिसे पाने के लिए अनवरत प्रयत्न और बचाये रखने के लिए सतत जाग्रति नहीं चाहिए, स्वराज्य कहलाने के लायक ही नहीं है। स्त्री-पुरुषों के विशाल समूह का राजनीतिक स्वराज्य एक-एक सख्श के अलग-अलग स्वराज्य से केई ज्यादा अच्छी (या भिन्न) चीज नहीं है और इसलिए उसे पाने का तरीका वही है, जो एक-एक आदमी के आत्म-स्वराज्य या आत्म-संयम का है।

मेरे सपनों का स्वराज्य : मेरे... सपनों के स्वराज्य में जाति (रेस) या धर्म के भेदों का कोई स्थान नहीं हो सकता। उस पर शिक्षितों या धनवानों का एकाधिपत्य नहीं होगा। वह स्वराज्य सबके लिए—सबके कल्याण के लिए होगा। सबकी गिनती में किसान तो आते ही हैं, किन्तु लूले, लंगड़े, अंधे और भूख से मरने वाले लाखों-करोड़ों मेहनतकश मजदूर भी अवश्य आते हैं।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि भारतीय स्वराज्य तो ज्यादा संख्या वाले समाज का यानी हिन्दुओं का ही राज्य होगा। इस मान्यता से ज्यादा बड़ी कोई दूसरी गलती नहीं हो सकती। अगर यह सही सिद्ध हो तो अपने लिए मैं ऐसा कह सकता हूं कि मैं उसे स्वराज्य मानने से इनकार कर दूंगा और अपनी सारी शक्ति लगाकर उसका विरोध करूंगा। मेरे लिए हिन्द स्वराज्य का अर्थ सब लोगों का राज्य, न्याय का राज्य है।

स्वराज्य...जितना किसी राजा के लिए होगा उतना ही किसान के लिए, जितना किसी धनवान् जमींदार के लिए होगा उतना ही भूमिहीन खेतिहर के लिए, जितना हिन्दुओं के लिए होगा उतना ही मुसलमानों के लिए, जितना जैन, यहूदी और सिख लोगों के लिए होगा उतना ही पारसियों और ईसाइयों के लिए। उसमें जाति-पांति, धर्म या दरजे के भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं होगा।

मेरे सपने का स्वराज्य तो गरीबों का स्वराज्य होगा। जीवन की जिन आवश्यकताओं का उपभोग राजा और अमीर लोग करते हैं, वही गरीबों को भी सुलभ होनी चाहिए, इसमें फर्क के लिए स्थान नहीं हो सकता। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हमारे पास उनके जैसे महल होने चाहिए। सुखी जीवन के लिए महलों की कोई आवश्यकता नहीं। हमें महलों में रख दिया जाय तो हम घबड़ा जायं। लेकिन जीवन की वे सामान्य सुविधाएं गरीबों को भी अवश्य मिलनी चाहिए, जिनका उपभोग अमीर आदमी करता है। मुझे इस बात में बिलकुल संदेह नहीं है कि हमारा स्वराज्य तब तक पूर्ण स्वराज्य नहीं होगा, जब तक वह गरीबों को ये सारी सुविधाएं देने की पूरी व्यवस्था नहीं कर देता।

स्वराज्य की मेरी कल्पना के विषय में किसी को कोई गलतफहमी नहीं होनी चाहिए। उसका अर्थ विदेशी नियंत्रण से पूरी मुक्ति और पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता है। उसके दो दूसरे उद्देश्य भी हैं : एक छोर पर है नैतिक और सामाजिक उद्देश्य और दूसरे छोर पर इसी कक्षा का दूसरा उद्देश्य है धर्म। यहां 'धर्म' शब्द का सर्वोच्च अर्थ अभीष्ट है। उसमें हिन्दू-धर्म, इस्लाम, ईसाई-धर्म आदि सबका समावेश होता है, लेकिन वह इन सबसे ऊंचा है।...इसे हम स्वराज्य का समचतुर्भुज कह सकते हैं, यदि उसका एक भी कोण विषम हुआ तो उसका रूप विकृत हो जायेगा।

अगर स्वराज्य का अर्थ हमें सभ्य बनाना और हमारी सभ्यता को अधिक शुद्ध तथा मजबूत बनाना न हो, तो वह किसी कीमत का नहीं होगा। हमारी सभ्यता का मूल तत्त्व ही यह है कि हम अपने सब कामों में,

फिर वे निजी हों या सार्वजनिक, नीति के पालन को सर्वोच्च स्थान देते हैं।

अहिंसक समाज ही सच्चा स्वराज्य : मेरी कल्पना का स्वराज्य तभी आयेगा, जब हमारे मन में यह बात अच्छी तरह जम जाय कि हमें अपना स्वराज्य सत्य और अहिंसा के शुद्ध साधनों द्वारा ही हासिल करना है, उन्हीं के द्वारा हमें उसका संचालन करना है और उन्हीं के द्वारा हमें उसे कायम रखना है। सच्ची लोकसत्ता या जनता का स्वराज्य कभी भी असत्यमय और हिंसक साधनों से नहीं आ सकता। कारण स्पष्ट और सीधा है। यदि असत्यमय और हिंसक उपायों का प्रयोग किया गया, तो उसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि सारा विरोध या तो विरोधियों को दबाकर या इनका नाश करके खतम कर दिया जायेगा। ऐसी स्थिति में वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा नहीं हो सकती। वैयक्तिकत स्वतंत्रता को प्रकट होने का पूरा अवकाश केवल विशुद्ध अहिंसा पर आधारित शासन में ही मिल सकता है।

अहिंसा पर आधारित स्वराज्य में लोगों को अपने अधिकारों का ज्ञान न हो तो कोई बात नहीं, लेकिन उन्हें अपने कर्तव्यों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। हरएक कर्तव्य के साथ उसकी तौल का अधिकार जुड़ा हुआ होता ही है, और सच्चे अधिकार तो वे ही हैं, जो अपने कर्तव्यों का योग्य पालन करके प्राप्त किये गये हों। इसलिए नागरिकता के अधिकार सिर्फ उन्हीं को मिल सकते हैं, जो जिस राज्य में वे रहते हों उसकी सेवा करते हों। और सिर्फ वे ही इन अधिकारों के साथ पूरा न्याय कर सकते हैं। हरएक आदमी को झूठ बोलने और गुण्डागिरी करने का अधिकार है, किन्तु इस अधिकार का प्रयोग उस आदमी और समाज, दोनों के लिए हानिकर है। लेकिन जो व्यक्ति सत्य और अहिंसा का पालन करता है, उसे प्रतिष्ठा मिलती है और इस प्रतिष्ठा के फलस्वरूप उसे अधिकार मिल जाते हैं। और जिन लोगों को अधिकार अपने कर्तव्यों के पालन के फलस्वरूप मिलते हैं, वे उनका उपयोग समाज की सेवा के लिए ही करते हैं, अपने लिए कभी नहीं। किसी राष्ट्रीय समाज के स्वराज्य का अर्थ उस समाज के विभिन्न व्यक्तियों के स्वराज्य (अर्थात् आत्म-शासन) का योग ही है। और ऐसा स्वराज्य व्यक्तियों द्वारा नागरिकों के रूप में अपने कर्तव्य के पालन से ही आता है। उसमें कोई अपने अधिकारों की बात नहीं सोचता। जब उनकी आवश्यकता होती है, तब वे उन्हें अपने-आप मिल जाते हैं और इसलिए मिलते हैं कि वे अपने कर्तव्य का संपादन ज्यादा अच्छी तरह कर सकें।

...अहिंसा पर आधारित स्वराज्य में कोई किसी का शत्रु नहीं होता, सारी जनता की भलाई का सामान्य उद्देश्य सिद्ध करने में हरएक अपना अभीष्ट योग देता है, सब लिख-पढ़ सकते हैं, और उनका ज्ञान दिन-दिन बढ़ता रहता है। बीमारी और रोग कम-से-कम हो जायं, ऐसी व्यवस्था की जाती है। कोई कंगाल नहीं होता और मजदूरी करना चाहने वाले को काम अवश्य मिल जाता है। ऐसी शासन-व्यवस्था में जुआ, शराबखोरी और दुराचार को या वर्ग-विद्वेष को कोई स्थान नहीं होता। अमीर लोग अपने धन का उपयोग बुद्धिपूर्वक उपयोगी कार्यों में करते हैं। अपनी शान-शौकत बढ़ाने में या शारीरिक सुखों की वृद्धि में उसका अपव्यय नहीं करते। उसमें ऐसा नहीं हो सकता, होना नहीं चाहिए, कि चंद अमीर तो रत्न-जटित महलों में रहें और लाखों-करोड़ों ऐसी मनहूस झोपड़ियों में, जिनमें हवा और प्रकाश का प्रवेश न हो। अहिंसक स्वराज्य में न्यायपूर्ण अधिकारों का किसी के भी द्वारा कोई अतिक्रमण नहीं हो सकता और इसी तरह किसी को कोई अन्यायपूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते। सुसंगठित राज्य में किसी के न्याय अधिकार का किसी दूसरे द्वारा अन्यायपूर्वक छीना जाना असंभव होना चाहिए और कभी ऐसा हो जाय, तो अपहर्ता को अपदस्थ करने के लिए हिंसा का आश्रय लेने की जरूरत नहीं होनी चाहिए।

लोकतंत्र और हिंसा का मेल नहीं बैठ सकता। जो राज्य आज नाममात्र के लिए लोकतंत्रात्मक हैं, उन्हें या तो स्पष्ट रूप से तानाशाही का हामी हो जाना चाहिए, या अगर उन्हें सचमुच लोकतंत्रात्मक बनना है तो उन्हें साहस के साथ अहिंसक बन जाना चाहिए। यह कहना बिलकुल अविचारपूर्ण है कि अहिंसा का पालन केवल व्यक्ति ही कर सकते हैं, और राष्ट्र—जो व्यक्तियों से ही बनते हैं—हरगिज नहीं।

प्रजातंत्र का अर्थ मैंने यह समझा है कि इस तंत्र में नीचे-से-नीचे और ऊंचे-से-ऊंचे आदमी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिलना चाहिए। लेकिन सिवा अहिंसा के ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। संसार में आज कोई भी देश ऐसा नहीं है, जहां कमजोरों के हक की रक्षा बतौर फर्ज के होती हो। अगर गरीबों के लिए कुछ किया भी जाता है, तो वह मेहरबानी के तौर पर किया जाता है।

पश्चिम का आज का प्रजातंत्र जरा हल्के रंग का नाजी और फासिस्ट तंत्र ही है। ज्यादा-से-ज्यादा यह कहा जा सकता है कि यह प्रजातंत्र साम्राज्यवाद की नाजी और फासिस्ट चाल को ढंकने के लिए एक आडंबर है।...हिन्दुस्तान सच्चा प्रजातंत्र गढ़ने का प्रयत्न कर रहा है, अर्थात् ऐसा प्रजातंत्र, जिसमें हिंसा के लिए कोई स्थान न होगा।

सच्चा स्वराज्य : सरकारी नियंत्रण से मुक्ति : जब राजसत्ता जनता के हाथ में आ जाती है, तब प्रजा की आजादी में होने वाले हस्तक्षेप की मात्रा कम-से-कम हो जाती है। दूसरे शब्दों में, जो राष्ट्र अपना काम राज्य के हस्तक्षेप के बिना ही शांतिपूर्वक और प्रभावपूर्ण ढंग से कर दिखाता है, उसे ही सच्चे अर्थों में लोकतंत्रात्मक कहा जा सकता है। जहां ऐसी स्थिति न हो, वहां सरकार का बाहरी रूप लोकतंत्रात्मक भले

हो, परंतु वह नाम के ही लोकतंत्रात्मक है।...सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे हुए (दस-बीस) आदमी नहीं चला सकते। वह तो नीचे से हरएक गांव के लोगों द्वारा चलायी जानी चाहिए।

स्वराज्य का अर्थ है सरकारी नियंत्रण से मुक्त होने के लिए लगातार प्रयत्न करना, फिर वह नियंत्रण विदेशी सरकार का हो या स्वदेशी सरकार का। यदि स्वराज्य हो जाने पर लोग अपने जीवन की हर छोटी बात के नियमन के लिए सरकार का मुंह ताकना शुरू कर दें, तो वह स्वराज्य-सरकार किसी काम की नहीं होगी।

शहर और गांव

मेरी दृढ़ मान्यता है कि अगर भारत को सच्ची आजादी प्राप्त करनी है और भारत के जरिए संसार को भी, तो आगे या पीछे हमें यह समझना होगा कि लोगों को गांवों में ही रहना है, शहरों में नहीं; झोपड़ियों में रहना है, महलों में नहीं। करोड़ों लोग शहरों या महलों में कभी एक-दूसरे के साथ शांतिपूर्वक नहीं रह सकते। उस परिस्थिति में उनके पास सिवा इसके कोई चारा नहीं होगा कि वे हिंसा और असत्य, दोनों का सहारा लें।

और मेरी मान्यता है कि सत्य और अहिंसा के बिना मनुष्य-जाति का विनाश हो जायेगा। सत्य और अहिंसा को हम ग्रामीण जीवन की सादगी में ही प्राप्त कर सकते हैं।...अगर दुनिया आज गलत रास्ते पर जा रही है तो मुझे उसकी चिन्ता नहीं होनी चाहिए। हो सकता है कि भारत भी उसी रास्ते जाय और जिस तरह पतंगा दीपक के चारों ओर नाचकर अंत में उसी में जल मरता है, उसी प्रकार वह भी नष्ट हो जाय। लेकिन भारत को और भारत के जरिए सारी दुनिया को भी विनाश से बचाने का आखिरी सांस तक प्रयत्न करना मेरा परम कर्तव्य है।

मेरे कहने का सार यह है कि मनुष्य को अपनी जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति में संतोष मानना चाहिए और स्वावलंबी होना चाहिए। अगर वह इतना संयम नहीं रखेगा तो वह अपने-आपको बचा नहीं सकेगा।...मैं आधुनिक विज्ञान का प्रशंसक हूं, लेकिन मैं देखता हूं कि उसके प्रकाश में पुरानी चीज का ही फिर से संशोधन और नवीनीकरण करना होगा।

आजादी का प्रारंभ : आजादी नीचे से शुरू होनी चाहिए। हरएक गांव में लोगों की हुकूमत या पंचायत का राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलब यह है कि हरएक गांव को अपने पांव पर खड़ा होना होगा—अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोबार खुद चला सके। यहां तक कि वह सारी दुनिया के खिलाफ अपनी रक्षा खुद कर सके। उसे तालीम देकर इस हद तक तैयार करना होगा कि वह बाहरी हमले के मुकाबले में अपनी रक्षा करते हुए मर-मिटने के लायक बन जाय। इस तरह आखिर हमारी बुनियाद व्यक्ति पर होगी। इसका यह मतलब नहीं कि पड़ोसियों पर या दुनिया पर भरोसा न रखा जाय, या उनकी राजी-खुशी से दी हुई मदद न ली जाय। कल्पना यह है कि सब लोग आजाद होंगे और सब एक-दूसरे पर अपना असर डाल सकेंगे। जिस समाज का हरएक आदमी यह जानता है कि उसे क्या 'करना' चाहिए और इससे भी बढ़कर जिसमें यह माना जाता है कि बराबरी की मेहनत करके भी दूसरों को जो चीज नहीं मिलती है वह खुद भी किसी को नहीं लेनी चाहिए, वह समाज जरूर ही बहुत ऊंचे दरजे की सभ्यता वाला होना चाहिए।

वैसे समाज की रचना सत्य और अहिंसा पर ही हो सकती है। (और) मेरी राय है कि जब तक ईश्वर पर जीता-जागता विश्वास न हो, तब तक सत्य और अहिंसा पर चलना असंभव है। ईश्वर या खुदा वह जिन्दा ताकत है, जिसमें दुनिया की तमाम ताकतें समा जाती हैं। वह किसी का सहारा नहीं लेती और दुनिया की दूसरी सब ताकतों के खतम हो जाने पर भी कायम रहती है।... ❑

मैं जलियांवाला बाग हूं

❑ अरुण सिंह

विप्लव राग कि सप्त-स्वरी
विद्रोही-वेदि की आग हूं
अपनों के शव से दबती
बहनों का उजड़ा सुहाग हूं...

सेना के बूटों से कुचले
शिशु-पुष्पों का पराग हूं...
क्रांति क्षेत्र, शोणित सिंचित,
मैं जलियांवाला बाग हूं...

भारत के 'भगत' का महत्तीर्थ
मैं 'ऊधम' का अनुराग हूं...
पहले था शुष्क व अपसर्जित,
अब ऊष्ण-लहू का तड़ाग हूं...

यातना से भावना जागृति
का साक्षी भूभाग हूं...
क्रांति क्षेत्र, शोणित सिंचित,
मैं जलियांवाला बाग हूं...

महायुद्ध में फिरंगियों के
साथियों का मोह-त्याग हूं...
तथाकथित उस 'सभ्य' ब्रितानी
'सूर्य' में काला दाग हूं...

संवेदनशील मनों में चलता
विचार-क्रांति का याग हूं...
क्रांति क्षेत्र, शोणित सिंचित,
मैं जलियांवाला बाग हूं...

राष्ट्र-भाव से भरे हुए
हर क्रांत-दर्शी का दिमाग हूं...
राष्ट्र-प्रेम के वासंतिक
उत्सव का रक्तिम फाग हूं...

हर दमन-चक्र की तिमिर-निशा में
अविरल जलता चिराग हूं...
क्रांति क्षेत्र, शोणित सिंचित,
मैं जलियांवाला बाग हूं...

क्रांति क्षेत्र, शोणित सिंचित,
मैं जलियांवाला बाग हूं... ❑

मजदूर-दिवस : 1 मई पर विशेष

भारत की नियति को पुनर्परिभाषित करने का कार्यक्रम

❑ जयप्रकाश नारायण

आज भारतीय राजनीति में स्थापित राजनीतिक दलों की करनी से मौजूदा संसदीय व्यवस्था पर गहरे संदेह पैदा हुए हैं। 1974 के जेपी आंदोलन से जो देश में राजनैतिक, सामाजिक चेतना जगी और बाद में अन्ना आंदोलन ने देश में थोड़ी ही सही एक जागरूकता पैदा की, वह कहीं ठिठक गयी लगती है। आगे की दिशा क्या हो, यह भ्रम बना हुआ है। लोकनायक जयप्रकाश का यह साठ साल पुराना आलेख नई दिशा दिखा सकता है। –सं.

समुदाय में, श्रमिक का केन्द्रीय स्थान होना चाहिए, क्योंकि यह माना जायेगा कि समुदाय के लिए श्रम सर्वाधिक आवश्यक वस्तु है। श्रम के बिना समुदाय जीवित नहीं रह सकता। इसलिए समुदाय में प्रत्येक वयस्क श्रमिक होगा। साथ ही श्रम, निरर्थक बेगारी होने के बजाय, मानवीय शक्तियों की एक सार्थक अभिव्यक्ति होगा, क्योंकि काम की प्रक्रिया में श्रमिक एक दायित्वपूर्ण भागीदार होगा। वहां वह अतिविशिष्टीकरण नहीं होगा जिसमें श्रमिक को स्वचालन-यंत्रवत् बनाने की प्रवृत्ति होती है। बल्कि, सामुदायिक जीवन का कृषि—औद्योगिक रूप रहने के कारण, मनुष्य को बहुविध व्यवसाय करने का अवसर मिलेगा।

अब दो शब्द उद्योग, व्यापार इत्यादि के विषय में कहूंगा। मैं इस बात पर बल दे चुका हूं कि समुदायों का स्वरूप, विशुद्ध कृषिक या विशुद्ध औद्योगिक होने के विपरीत, कृषि-औद्योगिक होना चाहिए। मानवीय पैमाने के अनुकूल नये ढंग की प्रविधि की आवश्यकता पर भी मैं बल दे चुका हूं।

यहां सामाजिक संगठन तथा प्रविधि का जो रूप सुझाया गया है, उसके कारण यह निश्चित है कि अधिकांश औद्योगिक एवं अन्य आर्थिक संस्थाएं क्षेत्र और जिले में ही सीमित रहेंगी। कुछ संस्थाएं प्रादेशिक और कुछ राष्ट्रीय स्तर की होंगी।

इन संस्थाओं का रूप निजी, सहकारी या सामुदायिक हो सकता है। प्रारंभिक, क्षेत्रीय तथा जिला समुदायों में उद्योग एवं व्यापार का एक बड़ा भाग, संभवतः बृहत्तर भाग, स्वभावतः स्वामी-श्रमिक रूप का होगा। शेष भाग सहकारी या सामुदायिक होगा। कुछ इकाइयां निजी नियोक्ता-कर्मचारी ढंग की होंगी। प्रादेशिक और राष्ट्रीय उद्योग सहकारी, सामुदायिक या निजी ढंग के भी होंगे। शायद सामुदायिक व्यवसायों के विषय में व्याख्या के तौर पर कुछ कहना आवश्यक है। ये व्यवसाय समुदायों द्वारा स्थापित होंगे और उनका संचालन या तो (क) संबंधित समुदायों द्वारा उसी उद्देश्य के लिए गठित तथा कर्मचारियों के पूर्ण सहभाग से कार्यशील समितियों द्वारा; अथवा (ख) स्वयं कर्मचारियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से गठित समितियों द्वारा होगा।

परस्पर युद्ध में संलग्न वर्गों की कल्पना सामुदायिक समाज-व्यवस्था के लिए विदेशीय हैं तथा सामुदायिक भावना के विरुद्ध है। उस भावना की रक्षा के लिए हितों का समन्वयीकरण आवश्यक है जो केवल विश्वास, सहविभाजन तथा दायित्व—स्वीकरण—जो सामुदायिक जीवन के मौलिक सिद्धांत हैं—के आधार पर ही संभव है। अतः हड़ताल और तालाबंदी जैसी बातें सामुदायिक जीवन-पद्धति के लिए विदेशीय है। नैतिक प्रश्न वाले आत्यन्तिक मामलों में एक संभव कार्रवाई का रूप असहयोग हो सकता है।

प्रत्येक आर्थिक संस्था, चाहे स्वामित्व की दृष्टि से उसका जो रूप हो, उस समुदाय के साथ एकीकृत कर दी जायेगी, जिसके क्षेत्र में वह स्थित है। इसका अर्थ है कि उसकी स्थापना और उसका विकास सामुदायिक आवश्यकताओं के अनुरूप होगा : वह समुदाय द्वारा निर्धारित शर्तों के अनुसार काम करेगी और उक्त समुदाय के प्रति उत्तरदायी होगी। इसका यह भी अर्थ है कि ये संस्थाएं संगठनात्मक रूप से भी समुदाय के साथ एकीकृत होगी। प्रारंभिक समुदाय में, एकीकरण के मार्ग में कोई कठिनाई नहीं होगी—प्रत्येक संस्था सीधे निकटवर्ती समुदाय के साथ एकीकृत हो जायेगी। दूसरे समुदायों में एकीकरण की कोई ऐसी पद्धति, जो नीचे सुझाई गयी है, उद्देश्य के अनुकूल होगी। अपितु, यह स्थिति प्रयोग करने के लिए एक विस्तृत क्षेत्र प्रस्तुत करती है।

प्रत्येक सामुदायिक भूभाग (क्षेत्र, जिला इत्यादि) में उद्योग या अन्य व्यवसाय की प्रत्येक शाखा एक मंडल के रूप में संगठित की जायेगी जो स्वामी-श्रमिकों, अन्य श्रमिकों एवं स्वामियों, प्रबंधकों एवं प्रविधि-विशेषज्ञों का प्रतिनिधित्व करेगी। तात्पर्य यह कि प्रत्येक क्षेत्र, जिला, प्रदेश और देश में विभिन्न प्रकार के संघ—जैसे लोहारों, बढ़इयों, तेलियों (या उनकी सहकारियों), अनाज व्यापारियों, कृषि औजार, बैटरी आदि बनाने वाले कारखानों के संघ होंगे। प्रत्येक सामुदायिक क्षेत्र में ये सभी संघ मिलकर एक आर्थिक परिषद का निर्माण करेंगे। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र, जिला, प्रदेश और देश की अपनी आर्थिक परिषद परामर्श देने का कार्य करेगी और संबंधित सामुदायिक राजनीतिक संगठन (पंचायत समिति, जिला परिषद

आदि) में उसका प्रतिनिधित्व होगा। इन संघों और परिषदों को अपने तथा अपनी सदस्य-संस्थाओं के कार्यों को नियंत्रित करने के लिए नियम बनाने के अधिकार होंगे, बशर्ते कि ये नियम समुदाय के नियमों-विधियों के विरोधी न हों। ये संघ और परिषदें आधुनिक वर्ण-व्यवस्थाएं होंगी और उनके नियम आधुनिक वर्ण-धर्म होंगे। व्यक्तिगत व्यवसाय के विषय में भी एक बात कह दूं। पुरुषार्थ के अर्थ में व्यक्तिगत व्यवसाय के लिए समुदाय में पूर्णतम अवसर रहेगा। परन्तु समुदाय का व्यक्ति समुदाय की भावना से अनुप्राणित होगा। अतः समुदाय प्रधान समाज में व्यक्तिगत व्यवसाय भी उस भावना को ग्रहण करेगा और निजी तथा सामुदायिक कल्याण के लिए काम करेगा। इसके अलावा, व्यक्तिगत व्यवसाय भी स्वशासन के सिद्धांतों तथा समुदाय के प्रति उत्तरदायित्व एवं उनके साथ एकीकरण के सिद्धांतों के अधीन कार्य करेगा। यह पूछा जा सकता है कि क्या ये सारी बातें संविधान के निर्देशक सिद्धांतों तथा समाजवाद के आदर्शों की, जिनके साथ हमारी संसद-प्रतिबद्ध हो चुकी है, विरोधी नहीं होगी? इसके विपरीत, मैं दृढ़तापूर्वक अनुभव करता हूं कि एक ऐसे समाज में ही, जिसका वर्णन यहां किया गया है, वे सिद्धांत और आदर्श सिद्धि प्राप्त कर सकेंगे।

अभी सभी तर्क सूत्रों को हम संगृहीत और ग्रंथित कर लें। प्राचीन भारतीय चिन्तन और परम्परा; मनुष्य का सामाजिक स्वभाव; सामाजिक विज्ञान; सभ्यताच के नैतिक एवं आध्यात्मिक लक्ष्य; लोकतंत्र की यह उपेक्षा कि नागरिक अपने जीवन को सुव्यवस्थित एवं संचालित करने के कार्यक्रमों में भाग लें; मनुष्य को अपने-आप से वियुक्त होने तथा यंत्रमानवीकरण के दुर्भाग्य सोचने की आवश्यकता; राज्य को तथा समाज की अन्य संस्थाओं को मानवीय पैमाने में परिवर्तित करने की अपेक्षा; और, सर्वोपरि, मनुष्य को सभ्यता का केन्द्र बनाने का आदर्श—ये सारी बातें एक ही दिशा में : सामुदायगत या सामुदायिक जीवन-पद्धति; सामुदायिक आचारनीति और शिक्षा तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संगठन की ओर संकेत करती हैं। इस निबंध में मेरी दिलचस्पी मुख्यतः इस विषय के राजनीतिक पहलू में, हमारे देश के लिए सर्वाधिक वांछनीय राजनीतिक संगठन या राज्य-व्यवस्था के स्वरूप में निहित रही है।

जैसा कि मैंने संकेत किया है, इस राज्य-व्यवस्था की बुनियाद आवश्यक रूप से स्वशासी, स्वयं-पूर्ण, कृषि औद्योगिक, नागरिक-ग्रामीण, स्थानिक समुदाय होंगे। वर्तमान गांव और इसके पुनर्निर्माण के लिए स्थूल आधार प्रस्तुत करते हैं। इस संबंध में ग्राम पंचायतों के संस्थापन तथा सामुदायिक विकास जैसे कार्यक्रमों के शुभारंभ से, खादी ग्रामोद्योग आयोग की 'सघन क्षेत्र' विकास योजना से तथा ग्रामीण अर्थरचना के सहकारीकरण से एक अच्छी शुरुआत की गयी है। परंतु इस निबंध में प्रतिपादित दृष्टिकोण से इन कार्यक्रमों में कई गंभीर दोष हैं, जैसे (क) उनमें एक समग्र समाज-दर्शन का अभाव है; (ख) उनमें समुदाय की कल्पना स्पष्ट नहीं है; (ग) उनका लक्ष्य समुदाय के अंतर्गत कृषि एवं उद्योग के बीच संतुलन स्थापित करना नहीं है; (घ) उनका उद्देश्य यद्यपि आधार के स्तर पर समुदायों (चाहे उनकी कल्पना कितनी ही स्पष्ट हो) का निर्माण करना है, परंतु उच्चतर स्तरों पर सामाजिक संगठन की कल्पना वहीं रह जाती है, जो पश्चिम के (जिसमें हमारे वर्तमान उद्देश्य की दृष्टि से रूस भी शामिल है) परमाणवीकरण औद्योगिक समाज की कल्पना है।

इन दोषों में से प्रत्येक पर मैं संक्षेप में विचार करूंगा।

(क) देश के विकास-कार्यक्रमों के पीछे जो सामाजिक दर्शन हैं—यह मानते हुए कि ऐसा कोई दर्शन है—उसके दो हिस्से हैं : (1) आर्थिक विकास का दर्शन; और (2) लोकतांत्रिक समाजवाद का दर्शन।

इस देश में कोई भी व्यक्ति आर्थिक विकास की आवश्यकता को अस्वीकार नहीं करेगा। परंतु क्या यह विकास पश्चिम (जिसमें रूस को हम पुनः शामिल करते हैं) के समान मर्यादारहित होगा? क्या हम अपनी अर्थरचना को सत्ता के लिए या सुख-शांति के लिए विकसित करेंगे? हमारा जीवन क्या 'आर्थिकवाद' से अथवा संपूर्ण मनुष्य के विकास की आवश्यकता से प्रभावित होगा? इस संबंध में जो पहले कहा जा चुका है, उसकी यहां पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं है; परंतु यह समझना जरूरी है कि अभी हमारे विकास कार्यक्रमों के पीछे जिस सामाजिक दर्शन की प्रेरणा काम करती है वह वही है जिससे पाश्चात्य (और रूसी) समाज प्रभावित है। जैसा कि हम देख चुके हैं, वह दर्शन सामुदायिक विकास एवं समुदाय-प्रधान समाज-व्यवस्था के दृष्टिकोण से असंगत है।

जहां तक लोकतांत्रिक समाजवाद का संबंध है, इस पर कोई स्पष्ट चिन्तन नहीं दीख पड़ता है। पश्चिम में लोकतांत्रिक समाजवाद का अर्थ व्यवहार में, यद्यपि सिद्धांत में नहीं—राजकीय समाजवाद में हो गया है। और यदि उसका कोई दर्शन है तो वह ऊपर से आरोपित कल्याणवाद का दर्शन है, न कि समाजवादी जीवन-पद्धति का दर्शन है—जो जीवन प्रत्येक घर में, पड़ोस में जीया जाता है। यदि समाजवाद और ऊपर से आरोपित कल्याणवाद हमारे सामाजिक पुनर्निर्माण के आदर्श होने वाले हैं, तो आधार के स्तर पर समुदाय के विकास का न कोई सामाजिक महत्त्व है और न उसके सफल होने की कोई संभावना है। उस स्थिति में आधार और ऊपरी रचना परस्पर विरोधी होंगे और चूंकि शिखर सर्वसत्तायुक्त होगा, जैसा कि राजकीय समाजवाद के अंतर्गत होना अवश्यंभावी है—इसलिए ऊपरी रचना आधार को कमजोर करेगी। यह स्मरणीय है कि आरंभ में सोवियत व्यवस्था के सामने भी सामुदायिक व्यवस्था जैसी ही कोई चीज बनाने का लक्ष्य था; लेकिन चूंकि शिखर सर्वसत्तायुक्त हो गया, इसलिए आधार उसके नीचे कुचल कर समाप्त हो गया। सोवियत रूस में कोई सच्ची सोवियतें (पंचायतें) नहीं हैं—वह एकशिलात्मक राज्य बैठा है। *...क्रमशः अगले अंक में*

1 मई : मजदूर-दिवस

मजूर-हुजूर का भेद

❑ किशनगिरि गोस्वामी

गुमनाम पत्थर उस मजूर (श्रमिक) को मेरा शत-शत नमन!

हमारा विश्व-समाज दो विरोधी वर्गों में विभाजित है। साधारण भाषा में कहें, तो एक मेहनत करके खाता है, दूसरा दलाली करके। और, हम अक्सर एक को 'मजूर' कहते हैं और दूसरे को 'हुजूर'!

वर्ग विषमता की यह सामाजिक समस्या कोई स्वतंत्र समस्या नहीं है। यह आर्थिक और राजनैतिक केन्द्रीकरण का नतीजा मात्र है। प्रश्न यह है कि आखिर हुजूर लोग मजूरों का शोषण करते कैसे हैं? दो बिल्लियां मेहनत करके एक रोटी लायी थी, पर बन्दर उस रोटी का माकूल बंटवारा करने के बहाने उसे खा गया। उसी तरह मजूर रोटी का उत्पादन करता है और हुजूर लोग इंतजाम करने के बहाने उस रोटी को खा जाते हैं। मजूर महज पेट पर हाथ रखकर ताकते रह जाते हैं।

इसीलिए आज संसार में चारों ओर वर्गविहीन समाज कायम करने की मांग उठ रही है। लेकिन यह वर्गविहीन समाज कायम कैसे हो? अगर दुनिया में एक ही वर्ग रखना है, तो वह मजूरों यानि श्रमिकों का ही हो सकता है, क्योंकि हुजूर वर्ग यानी व्यवस्थापक वर्ग अकेले अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता! अतः वर्गहीन समाज कायम करने के लिए आवश्यक है कि हुजूर वर्ग का लोप हो। इस वर्ग को विघटित करने का तरीका तभी मालूम हो सकेगा, जब हम इस वर्ग के संगठित होने के इतिहास को समझें।

मानव-समाज के प्रथम युग में सभी लोग मजूर थे, सब उत्पादन करके खाते थे। सब सहयोगिता के आधार पर झुण्ड में रहते थे। इसीलिए भारतीय ग्रंथों में लिखा है कि सतयुग में एक ही वर्ग था। बाद में जब समाज में प्रतियोगिता का आर्विभाव हुआ, तब आपसी संघर्ष से हिंसा होने लगी। तब मनुष्य द्वारा राज्य-पद्धति के आविष्कार से हुजूर वर्ग की सृष्टि हुई। इस राज्य-प्रथा के विस्तार के साथ-साथ हुजूर वर्ग का भी विस्तार होता गया।

सफर में साथ चलता, हर कोई अपना नहीं होता,
मुसाफिर यह समझ ले, तो फिर धोखा नहीं होता।
महल, पुल, बुर्ज, गुम्बद, सर उठाए यूं नहीं मिलते,
अगर गुमनाम पत्थर, नींव का हिस्सा नहीं होता।

इसी तरह मनुष्य ने 'श्रम' टालने के लिए 'पूंजी' के आधार पर उद्योग-धंधों का संचालन तथा उत्पादित सामग्री के वितरण के बहाने एक अन्य प्रकार के हुजूरों की फौज खड़ी कर दी। फलस्वरूप आर्थिक एवं राजनैतिक केन्द्रीकरण के कारण आज मजूरों के कंधों पर हुजूरों के बोझ की वृद्धि से मजूर दब कर मर रहा है। उधर हुजूरों की संख्या में बेतहासा वृद्धि से उन्हें ये मजूरों के शरीर से उतना रस नहीं मिल रहा है, जिससे वे मोटे-ताजे रह सकें। इसलिए आज दोनों के सामने संकट है, यानी सारा संसार वर्ग-विषमता से जूझ रहा है।

ऐसे हालात में इस बात की दरकार है कि तत्काल और तुरंत एकवर्गीय समाज कायम हो अर्थात हुजूर वर्ग के विघटन से मजूरों का ही एक अर्द्धतवाही समाज कायम हो। सवाल यह है कि इस बदलाव की प्रक्रिया क्या हो? दो तरीके हैं :

1. वर्ग-संघर्ष का हिंसात्मक तरीका,
2. वर्ग-परिवर्तन की अहिंसात्मक क्रांति

एक विनाशकारी तरीका है, दूसरा क्रांतिकारी! पहले तरीके से मजूरों द्वारा हुजूरों के उन्मूलन की चेष्टा होगी। और दूसरे से हुजूर भी मजूर बन कर मजूरों में विलीन हो जायेंगे। पहले तरीके की काफी मुल्कों में आजमाईश हुई और दुनिया ने देखा है कि उसका कोई नतीजा नहीं निकला। बल्कि समाज एक समस्या से निकलकर उससे भी जटिल दूसरी समस्या में उलझ जाता है।

रूस और चीन में वर्ग उन्मूलन की चेष्टा दुनिया ने देखी है। वहां हुजूर वर्ग खत्म नहीं हुआ, उनकी केवल चोटी ही कटी। सारा शरीर ज्यों का त्यों रह गया। पूंजीपतियों का नाश तो हुआ, लेकिन वहां इतना जबरदस्त एक व्यवस्थापक राज्य कायम हुआ कि इस व्यवस्था के नाम पर एक हुजूर वर्ग इतना अधिक संगठित हो गया कि मजूर पूर्ण रूप से उसके नीचे दब गया है। पूंजीपति रूपी चोटी रहने पर तो जनता उसे पकड़ भी सकती थी, लेकिन अब तो उससे भी हाथ धो बैठे और एक भयंकर संगठित दल की मुट्ठी के नीचे चले गये।

इसीलिए महात्मा गांधी ने वर्ग-परिवर्तन की अहिंसक क्रांति का आवाहन किया था। वे हुजूर वर्ग को सामाजिक उत्पादन में शामिल कर उत्पादक-वर्ग में विलीन होने के लिए कहते थे और इसका सक्रिय कार्यक्रम भी देश के सामने रखते थे। सन् 1945 में जेल से निकलते ही उन्होंने कहा था कि—अंग्रेज जा रहे हैं और शायद हम जैसा समझते हैं, उससे भी जल्दी जायेंगे। अब हमें शोषणविहीन समाज कायम करने के लिए सक्रिय कदम उठाना है।

अतः आज यह गंभीर चिन्तन का विषय है कि गांधी की उस सीख को हम कितना अपना पाये हैं? जर्मन दार्शनिक कवि फ्रेडरिक नीत्तसे ने कहा है, "आज भी लोगों के दो समूह है—गुलाम और आजाद मनुष्य! जिस किसी के पास दिन को 2/3 हिस्सा खुद के लिए नहीं है, वह गुलाम है। चाहे वह राजनेता, अधिकारी, व्यापारी जो भी हो। हमें गांधी की सीख पर कुछ उत्पादक कार्य करने का प्रण करना चाहिए, अन्यथा भारत में ही नहीं, पूरी दुनिया में श्रमिक कल्याण के आयोजन महज 'कर्मकांड' के रूप में रस्मी तौर पर मनाने की कोई सार्थकता नहीं है। ❑

चीन के बाद अब भारत में मजदूरों के लहू को निचोड़ने की तैयारी में फॉक्सकॉन

❑ अखिल कुमार

चीन के मजदूर आत्महत्याओं के लिए कुख्यात कंपनी है फॉक्सकॉन

एप्पल, एचपी, डेल्ल और सोनी जैसी जानी-मानी कंपनियों के लिए आईफोन, आईपैड तथा अन्य महंगे इलेक्ट्रॉनिक साजो-सामान बनाने वाली ताइवानी कंपनी फॉक्सकॉन ने चीन के बाद अब भारत को अपना इलेक्ट्रॉनिक औद्योगिक केन्द्र बनाने का ऐलान किया है। महाराष्ट्र में लगभग 12 फैक्टरियां खोलने का करार फॉक्सकॉन पहले ही कर चुकी है। इसी साल अगस्त के महीने में वह और महाराष्ट्र सरकार ने प्लाण्ट लगाने के लिए पुणे के पास तालेगांव में 1500 एकड़ जमीन की पेशकश भी की है। इसके अलावा 'गुजरात विकास मॉडल' की बदौलत भारत के बड़े पूंजीपतियों की लिस्ट में शामिल हुए अदाणी के साथ मिलकर भी फॉक्सकॉन की गुजरात में एक प्लांट शुरू करने की योजना है। साथ ही फॉक्सकॉन की, स्नैपडील और माइक्रोमेक्स जैसी भारतीय कंपनियों की पार्टनशिप में भी निवेश करने की योजना है। टाटा और अदाणी, फॉक्सकॉन के साथ मिलकर आईफोन और आईपैड बनाना चाहते हैं।

गौरतलब है कि फॉक्सकॉन मशहूर कंपनी एप्पल की सबसे बड़ी सप्लायर है और विश्वभर में होने वाले इलेक्ट्रॉनिक सामान के उत्पादन का 40 फीसदी अकेली यही कंपनी करती है। इसके ज्यादातर प्लांट चीन में है। चीन के 9 शहरों में इसकी 12 फैक्टरियां हैं, जिनमें लगभग 14 लाख मजदूर काम करते हैं। एप्पल के लिए यह आईपड और आईफोन जैसे महंगे इलेक्ट्रॉनिक गैजेट बनाती है, जो तमाम देशों में खाये-पिये-अघाये वर्ग के लोगों की जेबों का सिंगार बनते हैं। लेकिन इन खाये-पिये-अघाये वर्ग के लोगों को इस बात का एहसास तक नहीं है कि जिन आईपैडों और आईफोनों को हाथ में ले वे इठलाकर चलते हैं उनको बनाते समय मजदूरों को कितनी नारकीय परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। फॉक्सकॉन के प्लांटों में मजदूरों को दिनभर एक ही जगह बैठकर मोबाइल और लैपटॉप के महीन पुर्जों को असेम्बली लाइन पर 12-12 घंटे तक बनाने का नीरस काम करना पड़ता है। जब एप्पल या कोई अन्य कंपनी कोई नया उत्पाद बाजार में उतारती है तो इसकी मांग को तेजी से पूरा करने के लिए मजदूरों से हफ्तेभर में 120 घंटे से ऊपर काम कराया जाता है। यही काम 24 घंटे और सातों दिन चलता है। असेम्बली लाइन की गति बढ़ाने के लिए मजदूरों पर कैमरों के जरिये निगरानी रखी जाती है। और थोड़ा-सा धीमा होने पर मजदूरों को सरेआम जलील किया जाता है और उनसे गाली-गलौज तक की जाती है। फैक्टरी में मैनेजर, इंस्ट्रक्टर और गार्ड गुंडों की तरह व्यवहार करते हैं। 12-14 साल के बच्चों तक से भी नये आईफोन की स्क्रीन को चमकाने जैसे काम करवाये जाते हैं। मजदूरों को कंपनी अपने कैम्पस में ही रहने की जगह देती है। इस जेलनुमा जगह पर 12 बाय 12 के कमरों में कई मजदूरों को ठुंसकर रहना पड़ता है। अपनी इन भयावह स्थितियों के लिए यह कंपनी पहली बार तब चर्चा में आयी जब वर्ष 2010 में ही इसके 18 मजदूरों ने आत्महत्या करने की कोशिश की, जिनमें से 14 मजदूरों की मौत हो गयी। इसके बाद दुनिया भर में फॉक्सकॉन और एप्पल की आलोचना हुई। उस समय अपनी तस्वीर सुधारने के लिए फॉक्सकॉन तथा एप्पल ने मजदूरों के काम के हालात सुधारने का वायदा किया लेकिन काम के हालातों में सुधार करने की बजाय, कंपनी ने ऐसी व्यवस्था करनी शुरू कर दी कि मजदूर आत्महत्या ही न करें। मजदूरों के होस्टलों के इर्द-गिर्द स्टील का जाल और खिड़कियों पर स्टील के रोड लगा दिये गये। होस्टलों में धर्मगुरुओं, कौंसलरों और डॉक्टरों को फेरियां शुरू कर दी गयीं जिनका काम था कि मजदूरों को जीवन जीने का पाठ पढ़ायें। मजदूरों को काम पर रखा जाता है तो पहले उनसे एक कागज पर हस्ताक्षर करवाया जाता है कि वे आत्महत्या नहीं करेंगे और करेंगे भी तो कंपनी की इसमें कोई जिम्मेदारी नहीं होगी। लेकिन मजदूरों के काम के हालात वहां जस के तस रहे और मजदूरों की आत्महत्याएं भी आज तक जारी हैं। और साथ ही जारी है फॉक्सकॉन और एप्पल द्वारा जांच एजेंसियों से नकली जांच करवाकर दुनिया के सामने अपनी तस्वीर सुधारने की कोशिशें। आये दिन वहां कंपनी के विभिन्न प्लांटों पर मजदूरों के संघर्षों की खबरें आती रहती हैं। कई बार तो मजदूर अपने भयानक हालातों के विरोध में सामूहिक आत्महत्या की धमकी भी दे चुके हैं।

वैसे भारत के लिए भी फॉक्सकॉन कोई नयी नहीं है। यहां पर भी इसका इतिहास मजदूर हड़तालों से भरा पड़ा है। वर्ष 2006 में पहली बार फॉक्सकॉन ने भारत में उत्पादन

शुरू किया था। इसके प्लांट चेन्नई के नजदीक स्थित थे। यहां यह मुख्यतः नोकिया के लिए उत्पादन करती थी। नोकिया द्वारा पहले ऑर्डरों को लगातार कम किये जाने और फिर पूरी तरह तरह खत्म कर दिये जाने के चलते दिसंबर 2014 में इसने अपने आखिरी प्लांट पर भी काम बंद कर दिया। भारत में फॉक्सकॉन के मजदूर वेतन बढ़ोत्तरी, उनकी अपनी यूनियन को मान्यता दिये जाने, मजदूरों की स्थितियों को सुधारने जैसे मुद्दों को लेकर लगातार हड़ताल करते रहे थे। मजदूरों के अनुसार 4-5 साल कंपनी में काम करने के बाद भी उनका वेतन महज 4500-5000 रुपये प्रतिमाह होता था और कई मजदूरों से तो 2500-3000 रुपये प्रतिमाह पर काम करवाया जाता था। मजदूरों की अपनी यूनियन को भी मान्यता नहीं दी जा रही थी बल्कि उनके ऊपर मैनेजमेंट का पक्ष लेने वाली यूनियन थोपी जा रही थी। इसके अलावा प्लांट में भी स्थितियां भयंकर थीं। घुटन-भरे कमरों में टारगेट पूरे करने के दबाव में लगातार काम करना पड़ता था, जिसके चलते आये दिन मजदूर बीमार होते रहते थे। चिकित्सा और कैंटीन की कोई सुविधा नहीं थी। ऐसी स्थितियों से आक्रोशित हो जब मजदूर हड़ताल करते थे तो मैनेजमेंट-पुलिस के गठजोड़ द्वारा उनके संघर्ष को बर्बरता से कुचल दिया जाता था।

अब यही नर-पिशाच कंपनी फिर से भारत आ रही है। लेकिन क्यों? दरअसल, यहां पर भी इन कंपनियों को इनकी मजदूर-विरोधी कार्य प्रणाली के लिए मजदूर संघर्षों का सामना करना पड़ता है, अपने मुनाफों को बरकरार रखने की एवज में वहां से ये कंपनियां ऐसी जगह की ओर प्रस्थान आरंभ कर देती हैं जहां मजदूरों की श्रम-शक्ति को बिना उनके विरोध के लूटा जा सके। और, भारत को इसके लिए बिल्कुल मुफीद जगह बना दिया गया है।

(नई आजादी उद्घोष, जनवरी 2016 से 'साभार') ❑

उर्वरता की हिंसक भूमि

❑ सोपान जोशी

सन् 1908 में हुई एक वैज्ञानिक खोज ने हमारी दुनिया बदल दी है। शायद किसी एक आविष्कार का इतना गहरा असर इतिहास में नहीं होगा। आज हममें से हर किसी के जीवन में इस खोज का असर सीधा दीखता है। इससे मनुष्य इतना खाना उगाने लगा है कि एक शताब्दी में ही चौगीनी बढ़ी आबादी के लिए भी अनाज कम नहीं पड़ा। लेकिन इस आविष्कार ने हिंसा का भी एक ऐसा रास्ता खोला है, जिससे हमारी कोई निजाद नहीं है। दो विश्व युद्धों से लेकर आतंकवादी हमलों तक। जमीन की पैदावार बढ़ाने वाले इस आविष्कार से कई तरह के वार पैदा हुए हैं, चाहे विस्फोटकों के रूप में और चाहे पर्यावरण के विराट प्रदूषण के रूप में।

17 अप्रैल, 2013 को एक बड़ा धमाका हुआ था। इसकी गूंज कई दिनों तक दुनिया भर में सुनाई देती रही थी। अमेरिका के टेक्सास राज्य के वेस्ट नामक गांव में हुए इस विस्फोट से फैले दावानल ने 15 लोगों को मारा था और कोई 180 लोग हताहत हुए थे। हादसे तो यहां-वहां होते ही रहते हैं और न जाने कितने लोगों को मारते भी हैं। लेकिन यह धमाका कई दिनों तक खबर में बना रहा। इससे हुए नुकसान के कारण नहीं, जिस जगह यह हुआ था, उस वजह से।

धमाका किसी आतंकवादी संगठन के हमले से नहीं हुआ था। उर्वरक बनाने के लिए काम आने वाले रसायनों के एक भंडार में आग लग गयी थी। कुछ वैसी ही जैसी कारखानों में यहां-वहां कभी-कभी लग जाती है। दमकल की गाड़ियां पहुंचीं और अग्निशामक दल अपने काम में लग गया। लेकिन उसके बाद जो धमाका हुआ, उसे आसपास रहने वाले लोगों ने किसी एक भूचाल की तरह महसूस किया। अमेरिका के भूगर्भ सर्वेक्षण के उपकरणों पर यह धमाका 2.1 की प्रबलता के भूकंप की तरह दर्ज किया गया था। धुएं से यहां का जीवन कई रोज तक अस्त-व्यस्त रहा। इससे इतनी गर्मी निकली थी कि आसपास के भवन जले हुए ठूंठ से दिखने लगे थे। यह कोई अणुबम नहीं था।

इस कारखाने में अमोनियम नाइट्रेट नाम के रसायन का भंडार था, जिसका उपयोग यूरिया जैसी खाद बनाने के लिए होता है। इस खाद से फसलों की पैदावार में धमाकेदार बढ़ोतरी होती है। उर्वरक के कारखाने में यह पहला धमाका नहीं था। सन् 2009 में टैक्सास राज्य में ही जुलाई 30 को ब्राएन नामक नगर में ऐसे ही एक कारखाने में अमेनियम नाइट्रेट के भंडार में धमाका हुआ था। किसी की जान नहीं गयी थी। पर 80 हजार से ज्यादा लोगों को निकाल कर पूरा शहर खाली करवाना पड़ा था, जहरीले धुएं से बचने के लिए। सन् 1947 में टेक्सास सिटी में ही ऐसे ही एक हादसे में 581 लोगों की जानें गयी थीं। दमकल विभाग के कर्मचारियों में केवल एक जीवित बचा था। दो छोटे हवाई जहाज उड़ते-उड़ते नीचे गिर पड़े थे। धमाका इतना भयानक था कि उसकी ध्वनि तरंगों से 65 किलोमीटर दूर के घरों के शीशे टूट गये थे। टेक्सास सिटी डिजास्टर के नाम से कुख्यात यह अमेरिका की सबसे बड़ी औद्योगिक

दुर्घटना मानी गयी थी।इसे आज तक के सबसे शक्तिशाली धमाकों में गिना जाता है।

दुनिया के कई हिस्सों में ऐसे ही हादसे छोटे-बड़े रूप में होते रहे हैं। इनको जोड़ने वाली कड़ी है उर्वरक के कारखाने में अमोनियम नाइट्रेट। आखिर खेती के लिए इस्तेमाल होने वाले इस रसायन में ऐसा क्या है कि इससे इतनी तबाही मच सकती है? इसके लिए थोड़ा पीछे जाना पड़ेगा उन कारणों को जानने के लिए, जिनसे हरित क्रांति के उर्वरक तैयार हुए थे। यह किस्सा शुरू होता है बीसवीं शताब्दी के साथ।

औद्योगिक क्रांति की वजह से यह समय यूरोप में उथल-पुथल का था। यूरोप के देशों में राष्ट्रवाद एक बीमारी की तरह फैल चला था और पड़ोसी देशों में उन्मादी होड़ पैदा कर रहा था। आबादी बहुत तेजी से बढ़ी थी, जिसका एक कारण यह था कि विज्ञान ने कई विकट बीमारियों के इलाज ढूंढ़ लिए थे। कारखानों में काम करने के लिए लोग गांवों से शहरों में आ रहे थे। इतने लोगों को खिलाने जितनी पैदावार तब यूरोप के खेतों में नहीं थी। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसंधान से यह पता चल चुका था कि हर तरह के पौधों में खास उर्वरक नाइट्रोजन, फॉसफोरस और पोटेशियम होते हैं। यह भी कि इन्हें पाने में सबसे कठिन नाइट्रोजन के उर्वरक होते हैं। नाइट्रोजन की हवा में तो खूब भरमार है, लेकिन किसी के पास ऐसा तरीका नहीं था जो उसे हवा से खींच कर ऐसे रासायनिक रूप में ले आये जो पौधों के काम आसानी से आ जाये। पौधे उसे अपनी खुराक की तरह सोख लें।

खेतों में उर्वरता बढ़ाने के लिए नाइट्रोजन के उर्वरक पाने के लिए यूरोप दुनिया के कोने-कोने खंगाल रहा था। ऐसा एक स्रोत था 'गुनाओ'। यह आता था दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी छोर से दूर, प्रशांत महासागर के द्वीपों से। गुआनो असल में चिड़िया की बीट है। इन निर्जन द्वीपों पर न जाने कब से समुद्री चिड़ियाओं का वास था, जो समुद्र से मछली और दूसरे प्राणियों का शिकार करती हैं। अनगिनत इन चिड़ियों की बीट इन द्वीपों पर जम जाती थी और वहां इनके पहाड़ खड़े हो गये थे। बारिश कम होने के कारण ये पहाड़ जैसे के तैसे बने रहे और इनके उर्वरक गुण धुले नहीं थे। कुछ जगह तो बीट के ये पहाड़ 150 फुट से भी ऊंचे थे।

कोई 1500 साल पहले पेरू में गुआनो का उपयोग खेती में खाद की तरह होता था। इंका साम्राज्य के समय समारोहों में इस गुआनो बीट का स्थान सोने के बराबर था। गुआनो शब्द की व्युत्पत्ति ही पेरू के केचूअ समाज के एक शब्द, 'हुआनो' से है। एक जर्मन अंवेषक ने सन् 1803 में गुआनो के गुण जाने, और फिर उनकी लिखायी से पूरे यूरोप का परिचय चिड़िया की बीट से निकलने वाली इस खाद से हुआ था।

19वीं शताब्दी में यूरोप की गुआनो की जरूरत ही दक्षिण अमेरिका में यूरोपीय रुचि का खास कारण बन गयी। इस क्षेत्र पर इन्हीं सब कारणों से यूरोप के लोगों का कब्जा हुआ। इसके बाद गुआनो का खनन और निर्यात बहुत तेजी से हुआ। इस बीट से सैकड़ों बरसों में बने पहाड़ देखते ही देखते कटने लगे। सन् 1840 के दशक में गुआनो का व्यापार पेरू की सरकार की आमदनी का सबसे बड़ा स्रोत बन गया था। विशाल जहाजों में लादकर इसे यूरोप के खेतों में डालने के लिए लाया जाता था। फिर दुनिया के कई और हिस्सों से इसका निर्यात यूरोप होने लगा। इसे निकालने के लिए चीन से मजदूर भी लाए गये क्योंकि पेरू के लोग इस काम के लिए ठीक नहीं माने गये। गुआनो पर कब्जा बनाये रखने के लिए युद्ध तक लड़े गये थे।

यह पदार्थ ज्वलनशील होता है, खासकर नाइट्रोजन से मिलने के बाद। गुफाओं में चमगादड़ों की बीट में आग लगने के प्रमाण भी मिलते हैं। गुआनो का उपयोग विस्फोटक बनाने में भी होने लगा था। पेरू और पड़ोसी देश चिली में ही सॉल्टपीटर, यानि पोटेशियम नाइट्रेट नाम के खनिज मिल गये थे। अब गुआनो और सॉल्टपीटर यूरोप के लिए खाद ही नहीं, विस्फोटक बनाने के लिए कच्चे माल का स्रोत भी बन गये थे। दोनों के लिए नाइट्रोजन लगता है, पर युद्ध और खाद के नाइट्रोजन संबंध की बात बाद में।

इन दोनों पदार्थों को जहाज पर लाद कर यूरोप ले जाना बहुत खर्चीला सौदा था। और धीरे-धीरे गुआनो के पहाड़ भी खतम होने लगे थे। चिड़ियां बीट अपने लिए करती थीं, यूरोप के लिए थोड़े ही करती थीं! इसीलिए 19वीं सदी के अंत में यूरोप में होड़ लगी हुई थी, खाद और विस्फोटक बनाने के कोई नये सस्ते तरीके खोजने की, नाइट्रोजन के स्रोत की। कई देशों के वैज्ञानिक इस पर शोध कर रहे थे। फिर सन् 1908 में जर्मन रसायनशास्त्री फ्रिट्ज हेबर ने हवा से नाइट्रोजन खींचकर अमोनिया बनाकर दिखाया। सन् 1913 तक इस पक्रिया को बड़े औद्योगिक स्तर पर करने का तरीका भी खोज लिया गया था। बीएएसएफ नाम के एक जर्मन उद्योग में काम कर रहे कार्ल बॉश ने यह कर दिखाया था। प्रसिद्ध इंजीनियर और गाड़ियों में लगने वाले स्पार्क प्लग के आविष्कारी रॉबर्ट बॉश उनके चाचा थे। कई तरह की मशीनों पर आज भी चाचा बॉश का नाम चलता है। आज यह कंपनी भारत में भी आ गयी है। आगे चलकर इस प्रक्रिया को दोनों वैज्ञानिकों के नाम पर 'हेबर-बॉश प्रॉसेस' कहा गया।

इस समय यूरोप में राष्ट्रवाद का बोलबाला था और जर्मनी और इटली जैसे देश कई छोटी रियासतों के विलय से ताकतवर बन चुके थे। राष्ट्रवाद की धौंस ही सन् 1914 में पहले विश्व युद्ध का कारण बनी थी। इंग्लैंड की नौसेना ने जर्मनी की नाकेबंदी कर ली थी इसलिए जर्मनी को अब गुआनो और सॉल्टपीटर मिलना बंद हो गया था। तब हवा से अमोनिया बनाने वाली हेबर-

बॉश पद्धति से न केवल जर्मनी में यह बनावटी खाद बनती रही, युद्ध में इस्तेमाल होने वाला उनका असला और विस्फोटक भी इसी अमोनिया से बनने लगा। ऐसा माना जाता है कि अमोनिया बनाने का यह तरीका अगर जर्मनी के पास न होता तो पहला विश्व युद्ध काफी पहले खतम हो जाता।

युद्ध के बाद वैज्ञानिक श्री फ्रिट्ज और श्री बॉश को उनकी खोज के लिए नोबेल पुरस्कार दिया गया। इसमें कोई विरोधाभास नहीं था क्योंकि जिन अलफ्रेड नोबेल के नाम से यह पुरस्कार दिया जाता है, उन्होंने खुद डाएनामाइट ईजाद किया था और बोफोर्स नाम की कंपनी को इस्पात के कारोबार से हटाकर विस्फोटक के उत्पादन में लगा दिया था। पुरस्कार पाते वक्त श्री फ्रिट्ज ने अपने भाषण में कहा था कि इस आविष्कार के पीछे उनकाव ध्येय उस नाइट्रोजन को मिट्टी में वापस पहुंचाना है जो फसल के साथ बाहर निकल आती है। लेकिन यह सभी का पता था कि उनका एक ध्येय और भी था। अपने प्रतिक्रियाशील रूप में नाइट्रोजन विस्फोटकों को भी बनाती है। इसका कारण था श्री फ्रिट्ज का राष्ट्रवाद। उन्होंने कहा था कि शांति के समय वैज्ञानिक सभी लोगों के भले के लिए काम करता है पर युद्ध के समय में तो वह केवल अपने देश का होता है!

सन् 1871 में जर्मन भाषा बोलने वाले देशों में सबसे बड़ा क्षेत्र प्रशिया फ्रांस के साथ युद्ध लड़ रहा था। इस युद्ध के दौरान दूसरी जर्मन भाषा बोलने वाले देश भी प्रशिया के झंडे के नीचे एक साम्राज्य के रूप में जुड़ गये थे और इस तरह जर्मन राष्ट्र का उदय हुआ था। इस युद्ध ने यूरोप की राजनीति ही बदल दी थी। इकट्ठे होने से जर्मन राज्यों में राष्ट्रवाद की लहर चल रही थी। श्री फ्रिट्ज भी इससे अछूते नहीं थे। उनका शोध केवल हवा से नाइट्रोजन खींचने तक सीमित नहीं था। उन्हीं की एक और ईजाद थी युद्ध में इस्तेमाल होने वाली जहरीली गैस। उनका कहना था कि वे ऐसा हथियार ईजाद करना चाहते थे जो उनके देश को जल्दी से जीत दिला सके।

ऐसा ही एक हथियार था क्लोरीन गैस। इसका इस्तेमाल करके श्री फ्रिट्ज ने रासायनिक युद्ध की शुरुआत की थी। उन्हें आज भी रासायनिक हथियारों के जनक की तरह याद किया जाता है। पहली बार युद्ध के दौरान जहरीली गैस का उपयोग 22 अप्रैल 1915 को हुआ था। और इसके निर्देशन के लिए श्री फ्रिट्ज खुद बेलजियम गये थे। वापस लौटने पर इसे लेकर उनकी पत्नी क्लॅरा से उनकी खूब बहस हुई थी। सुश्री क्लॅरा रासायनिक हथियारों को अमानवीय मानती थीं और इसलिए वे इसे बनाने और दूसरे पक्ष पर इसका उपयोग एक अक्षम्य अपराध मानती थीं। इस घटना के दस दिन बाद ही सुश्री क्लॅरा ने अपने पति की पिस्तौल को अपने पर चलाकर आत्महत्या कर ली थी और अपने 13 साल के बेटे हरमॅन की गोदी में प्राण त्याग दिये थे। लेकिन श्री फ्रिट्ज अगले ही दिन रासायनिक हथियारों को रूस की सेना पर इस्तेमाल करवाने के लिए लड़ाई के मोर्चे पर चले गये थे!

सन् 1918 में जर्मनी की हार हो गयी। विश्वयुद्ध खतम हुआ। लेकिन अब अमोनिया बनाने के कई कारखाने यूरोप और अमेरिका में खुल चुके थे। यूरोप का माहौल राष्ट्रवादी ही बना रहा और फिर बीस साल में दूसरा विश्व युद्ध छिड़ गया। हेबर-बॉश पद्धति को अब तक हर कहीं अपना लिया गया था और विस्फोटक बनाने के लिए ढेर सारा अमोनिया हर देश के साथ लग गया था। दूसरा विश्व युद्ध भी समाप्त हुआ। लेकिन इन कारखानों को बंद नहीं किया गया। यह तो सबको पता था कि अमोनिया से बनावटी उर्वरक भी बनाये जा सकते हैं। इन कारखानों को यूरिया की खाद बनाने में लगा दिया गया।

इसी दौरान गेहूं की ऐसी फसलें भी ईजाद हुईं जो इस यूरिया को मिट्टी से उठाने में सक्षम थीं। ये फसलें बहुत तेजी से बढ़ती थीं और इनमें अनाज की पैदावार बहुत ज्यादा थी। इन फसलों और यूरिया के संयोग से ही हरित क्रांति हुई और खेती में उत्पादन इतना बढ़ गया जितना पहले कभी नहीं बढ़ पाया था। इन फसलों को ईजाद करने वाले कृषि वैज्ञानिक नॉर्मन बोरलॉग को भी फ्रिट्ज की ही तरह नोबेल पुरस्कार दिया गया था।

एक मोटा अंदाज बताता है कि हेबर-बॉश पद्धति से जिस जमीन से कोई 20 लोगों का अनाज पैदा होता था, उतनी ही जमीन आज 40 लोगों का अनाज पैदा करती है। एक विख्यात वैज्ञानिक का अनुमान है कि दुनिया की कुल आबादी का 40 फीसदी आज इसी पद्धति से उगा खाना खाता है। इतने भोजन के होने से और जानलेवा बीमारियों के इलाजों की खोज होने से मनुष्य को इतनी शक्ति मिली जितनी उसे पहले कभी नहीं मिली थी। 20वीं शताब्दी में मनुष्य की आबादी चौगुनी बढ़ गयी। बी.ए.एस.एफ. नाम की जिस कंपनी के लिए श्री कार्लबॉश काम करते थे, वह आज दुनिया की सबसे बड़ी रसायन बनाने वाली कंपनी मानी जाती है।

श्री फ्रिट्ज की इस खोज ने दुनिया बदल दी है। कारखानों में पैदा होने वाले यूरिया के असर को कई वैज्ञानिक बीसवीं सदी का सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार मानते हैं। हवा से नाइट्रोजन खींचने के लिए बहुत तेज तापमान और दबाव में पानी से हाइड्रोजन निकाला जाता था। इतना दबाव और गर्मी बनाने के लिए बहुत-सी ऊर्जा खर्च होती थी। आज इस पद्धति को और कारगर बनाया गया है और अब पानी की जगह प्राकृतिक गैस का इस्तेमाल होता है।

लेकिन आज नाइट्रोजन का जिक्र पैदावार के संदर्भ में कम और प्रदूषण के कारण ज्यादा होता है। हमारे देश में ही सस्ते यूरिया के ताबड़तोड़ इस्तेमाल से जमीन के रेतीले और तेजाबी होने का खतरा बढ़ता जा

रहा है। किसानों को सस्ते बनावटी उर्वरकों का इतना नशा हो चुका है कि जमीन बिगड़ती दिख रही हो फिर भी वे यूरिया डालते ही जाते हैं। यूरिया से लंबे हुए पौधों पर फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीड़े ज्यादा आते हैं। इसलिए उन पर कीटनाशकों का छिड़काव भी उतना ही ज्यादा किया जाता है।

इस तरह हम आज नाइट्रोजन की भरमार के युग में रह रहे हैं। विज्ञान हमें बता रहा है कि नाइट्रोजन के प्राकृतिक चक्र में मनुष्य ने इतना बदलाव ला दिया है कि यह कार्बन के उस चक्र से भी ज्यादा बिगड़ गया है, जिसकी वजह से जलवायु परिवर्तन हो रहा है। जमीन पर छिड़के नाइट्रोजन के यूरिया जैसे उर्वरकों का अधिकांश हिस्सा पौधों में नहीं जाता। आज हेबर-बॉश पद्धति से बने उर्वरक का खेती में इस्तेमाल 10 करोड़ टन है। इसमें से लोगों के भोजन में केवल 1.7 करोड़ टन वापस आता है। बाकी भाग पर्यावरण को दूषित करता है।

यह पानी के साथ बहकर जल स्रोतों में पहुंचता है, जहां इसकी मौजूदगी जहरीली काई का रूप लेती है। यह पानी से प्राणवायु खींच लेती है और नीचे के समस्त जीवन का दम घुटता है। ऐसे ही बरबाद होने वाले नाइट्रोजन का एक अंश प्रतिक्रियाशील होकर वातावरण में जाता है और जलवायु परिवर्तन करता है।

लेकिन हेबर-बॉश पद्धति का एक और असर है। अमोनिया के कारखाने बनाने में हर देश का सैनिक ध्येय भी होता है। युद्ध के समय यही कारखाने विस्फोटक और हथियार बनाने के काम आ सकते हैं। हेबर-बॉश पद्धति ईजाद हुए अब 100 साल हो गये हैं। एक वैज्ञानिक अनुमान कहता है कि इस शताब्दी में विस्फोटक बनाने का आधार भी हेबर-बॉश पद्धति ही रही है। वे मानते हैं कि इस पद्धति से बने असले ने दुनिया भर के सशस्त्र संघर्षों में सीधे-सीधे कोई 15 करोड़ लोगों की जानें ली हैं।

इस पद्धत के जितने नाटकीय असर दुनिया पर रहे हैं, उनसे श्री फ्रिट्ज भी बच नहीं पाये। उन्हें नोबेल पुरस्कार जैसे सम्मान मिले, उन्होंने फिर से शादी की, पर वे खुश नहीं रह पाये। इस दौरान जर्मन राष्ट्रवाद ने एडॉल्फ हिटलर की नाजी पार्टी का रूप ले लिया था। नाजी शासन की रासायनिक हथियारों में बहुत रुचि थी। उसने श्री फ्रिट्ज के सामने और अधिक शोध के लिए धन और सुविधाओं का प्रस्ताव रखा। पर इस दौरान नाजी पार्टी की यहूदियों के प्रति नफरत उजागर हो चुकी थी। कई प्रसिद्ध वैज्ञानिक जर्मनी छोड़कर इंग्लैंड और अमेरिका जा रहे थे। श्री फिट्ज ने ईसाई धर्म कबूल कर लिया था, लेकिन सब जानते थे कि वे यहूदी थे। सन् 1933 में वे जर्मनी छोड़कर इंग्लैंड में केम्ब्रिज आ गये। वहां से वे यहूदियों को दी गयी जमीन पर रहने के लिए फिलिस्तीन की ओर निकल पड़े थे। रास्ते में ही स्विट्जरलैंड में उनका निधन हो गया।

उनकी मृत्यु के बाद उनका परिवार भी जर्मनी छोड़कर भागा। उनकी दूसरी पत्नी और दो बच्चे इंग्लैंड आ गये थे। उनका बड़ा बेटा हरमॅन अमेरिका चला गया। सन् 1946 में उसने भी खुदकुशी कर ली। अपनी मां की ही तरह हरमॅन को भी श्री फ्रिट्ज के रासायनिक हथियार बनाने की शर्मिंदगी थी। रासायनिक हथियारों पर श्री फ्रिट्ज के शोध को नाजी सरकार ने बहुत आगे बढ़ाया। उसी से जाएक्लॉन-बी नाम की गैस बनी, जिसका इस्तेमाल बाद में नजरबंदी शिविरों में यहूदियों को मारने के लिए होता था। ऐसा कहा जाता है कि श्री फ्रिट्ज के परिवार, समाज के कई लोग इन शिविरों में इसी गैस से मारे गये थे।

इस तरह उर्वरता बढ़ाने वाली खाद ने अनाज का उत्पादन तो बढ़ाया ही लेकिन साथ ही उसने एक और हिंसक रूप भी धारण किया था। हिंसा की जमीन भी उसने पहले से कुछ ज्यादा उर्वरक बना दी है। ❑

दांडी मार्च का विस्तार है जनांदोलन

❑ डॉ. अनुज लुगुन

साल 1930 में मार्च महीने की 12 तारीख थी। जैसे हर रोज सूरज निकलता है, वैसे ही उस दिन भी सूरज निकलने वाला था, फिर भी उन लोगों को सूरज के उगने की प्रतीक्षा थी। उद्यपि उन्हें मालूम था कि वे सरकार के विरुद्ध कदम उठा रहे हैं और उसका परिणाम यातनामयी होगा, लेकिन सबने प्रण कर लिया था कि यदि कदम नहीं बढ़े, यदि आवाज नहीं उठी, तो उनके जीवन का भविष्य और भी अंधकारमय हो जायेगा। उस दिन भी सूरज उगा और एक सामान्य धोती और गमझा वाले ने सुबह की प्रार्थना के बाद अपनी लाठी संभालकर चलना शुरू किया। इतिहास में दर्ज है कि उस यात्रा की शुरुआत में 78 लोग शामिल थे, जो यात्रा के दौरान जन सैलाब में तब्दील हो गये। उनका गंतव्य दांडी का समुद्र तट था, लेकिन लक्ष्य स्वराज का था। उन्हें गंतव्य तक पहुंचने की हड़बड़ी नहीं थी, लेकिन उनकी बेचैनी में मुक्ति का ताप था। अंततः 24 दिन बाद वे दांडी पहुंचे और वहां उनके नेता ने अपने हाथों से नमक बनाया। वह नेता इतिहास में महात्मा गांधी के नाम से दर्ज हुआ और वह तारीख दांडी यात्रा के नाम पर दर्ज हुई थी। दांडी मार्च एक राजनीतिक प्रयोग था। इसने अपने मुल्क के नागरिकों को ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया को बताया कि आम जनता के हित में कानून न हो, तो उसे तोड़ने में डर नहीं होना चाहिए। जन-विरोधी नीतियों के विरुद्ध जन-आंदोलनों का होना जरूरी है।

आज एक मौजूद सवाल है कि क्या दांडी मार्च इतिहास में दर्ज हो गयी घटना मात्र थी? क्या आजादी के बाद जन-आंदोलनों की जरूरत खत्म हो गयी? सत्ता वर्ग के चरित्र की वजह से किसी भी समाज में जन-आंदोलन की संभावना हमेशा बनी रहती है। हाल के दिनों में अपने अधिकारों के लिए उठ रहे जनता के स्वर में क्या उस ऐतिहासिक दांडी यात्रा की या सत्याग्रह की वैचारिक झलक नहीं देखी जा सकती है?

कुछ दिनों पहले हुए किसानों के लाँग मार्च ने अचानक फिर से दांडी यात्रा की याद दिला दी। करीब तीस हजार से ज्यादा किसानों ने नासिक से मुंबई तक 180 किलोमीटर की पैदल यात्रा की। अपनी मांगों को लेकर विधानसभा के घेराव की उनकी योजना थी। भूखे-प्यासे ज्यों-ज्यों वे मुंबई के करीब पहुंच रहे थे, उनका ताप बढ़ रहा था। नंगे पैर चलकर आ रहे उनके पैरों पर जख्म हो गये थे, लेकिन उनके हौसले कम नहीं हुए, अंततः सरकार उनकी मांग मानने के लिए बाध्य हुई और उसने उन्हें पूरा करने का आश्वासन दिया।

किसानों का आंदोलन इन दिनों काफी तेज हुआ है। पिछले वर्ष अप्रैल के महीने में तमिलनाडु के किसानों ने नरमुंडों को लेकर दिल्ली में प्रदर्शन किया था। उसके बाद सौ से अधिक किसान संगठनों के लाखों किसानों ने दिल्ली में प्रदर्शन किया। उसी तरह राजस्थान, छत्तीसगढ़, लखनऊ, मध्य प्रदेश इत्यादि जगहों में किसान अपनी मांगों को लेकर लगातार शांतिपूर्ण तरीके से प्रदर्शन कर रहे हैं। किसान कर्जमाफी के साथ स्वामीनाथन कमेटी की रिपोर्ट को लागू करने की मांग कर रहे हैं। स्वामीनाथन कमेटी ने साल 2004 में अपनी रिपोर्ट में किसानों की उपज को औसत लागत मूल्य से पचास फीसदी ज्यादा समर्थन मूल्य देने की बात कही है। साथ ही किसानों के कर्ज की ब्याज दरों में कटौती की बात कही है। बाजार और कर्ज की गिरफ्त में फंसे किसान आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो रहे हैं। पी साईनाथ की रिपोर्ट के अनुसार नब्बे के बाद डेढ़ दशकों में लाखों किसानों ने आत्महत्या की है। साल 2016 के राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के मुताबिक, देश में किसान आत्महत्या की दर 42 फीसदी बढ़ी है। किसानों की त्रासद स्थिति की वजह खेती पर बाजार का नियंत्रण है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हस्तक्षेप से किसानों पर दबाव और अधिक बढ़ गया है, बढ़ रहा है।

किसानी के बाद अब शिक्षा भी बाजार की गिरफ्त में आ गया है। यूजीसी के नये रेगुलेशन के मुताबिक, अब वह विश्वविद्यालयों को अनुदान नहीं देगी। अब विश्वविद्यालय स्वायत्त होंगे और उन्हें स्वयं 'फंड जेनरेट' करना होगा। इसका स्पष्ट संकेत यह है कि अब विद्यार्थियों की फीस में कई गुना बढ़ोत्तरी होगी। इसके साथ ही अब वैसे ही सेंटर और डिपाट्रमेंट खुलेंगे, जो ज्यादा कमाऊ होंगे। यानी बाजार के मुताबिक शिक्षा को चलना पड़ेगा। जो विषय बाजार के अनुकूल नहीं होंगे, उनकी अब जरूरत नहीं होगी। यह ऐसी व्यवस्था होगी, जो शिक्षा को ज्ञान के बजाय मुनाफे की और शिक्षा क्षेत्र को सेवा के बजाय व्यापार की वस्तु बना देगा। इससे निम्न और सामान्य आय वालों की पहुंच से शिक्षा दूर हो जायेगी। सरकार यह व्यवस्था शिक्षा में गुणवत्ता के नाम पर करके अपने सामाजिक दायित्व से हाथ खींच रही है। इस बात में संदेह नहीं होना चाहिए कि बाजार के चंगुल में फंसकर किसानों की जो दुर्दशा हो रही है, वही दुर्दशा अब शिक्षा, शिक्षक और विद्यार्थियों की होने वाली है। इन्हीं सब मुद्दों सहित अन्य मांगों को लेकर 23 मार्च को भगत सिंह और उनके साथियों के शहादत के दिन जेएनयू के सैकड़ों छात्र और शिक्षक शांतिपूर्ण मार्च करते हुए संसद जा रहे थे। एक बड़ा मुद्दा जेंडर जस्टिस का भी था। उनके संसद पहुंचने के पहले ही पुलिस प्रशासन ने उन्हें रोक लिया। बात बढ़ने लगी, तो उन पर बेरहमी से लाठी चार्ज किया गया। उक्त बातों से यह साफ है कि सरकारें किसानों की कर्जमाफी को खैरात समझती हैं और विद्यार्थियों की मांग को बेबुनियाद मानती हैं। यह आर्थिक लक्ष्य और सामाजिक लक्ष्य का विखंडन है। इस तरह विकास के मूल्यों को हासिल नहीं किया जा सकता।

नब्बे के बाद जन-आंदोलनों का तेजी से उभार हुआ है। उत्पीड़ित समूह और सरकार की नीतियां आमने-सामने हैं। इतिहास में हम दांडी मार्च के महत्त्व को रेखांकित करते हैं। लेकिन, उसी इतिहास के दिये हुए विचार को जब हम अपने वर्तमान में जीते हैं, तो उसे अप्रासंगिक और गैरजरूरी समझा जाता है। दांडी मार्च अंतिम यात्रा नहीं थी, न ही सत्याग्रह सिर्फ औपनिवेशिक समय की जरूरत थी। जन-विरोधी नीतियों के विरुद्ध लोकतांत्रिक तरीके से आवाज उठाना ही दांडी मार्च का विचार है। यह विचार आज भी आदिवासियों के विस्थापन विरोधी आंदोलनों में, दिलतों-वंचितों, किसानों-विद्यार्थियों एवं अन्य नागरिक अधिकार आंदोलनों में दिखायी देता है। दांडी मार्च ने तो औपनिवेशिक कानून तोड़ा था, पर मौजूदा जन-आंदोलन तो संवैधानिक अधिकारों की ही मांग कर रहे हैं। विचार करना होगा। ❑

रामप्रवेश शास्त्री नहीं रहे

वरिष्ठ गांधीवादी एवं सर्वोदय जगत के पूर्व संपादक रामप्रवेश शास्त्री का 25 अप्रैल, 2018 को उनके गांव सोहांव, जिला-बलिया में निधन हो गया। आप लगभग 88 वर्ष के थे।

शास्त्रीजी गांधी विचार से ओतप्रोत थे। आपकी 'सत्य पथ', 'सत्याग्रह गाथा', 'बाबा विनोबा', 'संपूर्ण क्रांति' (खंडकाव्य), 'तितलौकी', 'यह तो घर है प्रेम का', 'बांह गहे की लाज', 'ज्यों की त्यों धर दीन्हीं', 'पानी में मीन पियासी', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'आत्म-दर्शन', 'वहाउल्लाह के निगुण वचन', 'भंगी मुक्ति', 'समाधान की दिशा', 'संतों की राह', 'यह तो सुमिरन नाहीं' आदि कई महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं। आप वर्ष 2002 से 2006 तक सर्वोदय जगत के संपादन का दायित्व बखूबी निभाया, सर्व सेवा संघ प्रकाशन द्वारा प्रकाशित दादा धर्माधिकारी की बहुमूल्य रचना 'समग्र सर्वोदय दर्शन' के चार खंडों का प्रशंसनीय संपादन किया। आप हृदय से सहयोगी वृत्ति एवं उदारमना थे।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन कार्यालय में 26 अप्रैल, 2018 को संयोजक श्री अरविन्द अंजुम की उपस्थिति में शोक-सभा का आयोजन किया गया। प्रकाशन व परिसर के सभी कार्यकर्ताओं ने दिवंगत आत्मा की शांति के लिए ईश्वर से प्रार्थना एवं सर्वधर्म प्रार्थना का पाठ करने के पश्चात् दो मिनट का मौन रखकर विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की।

शास्त्रीजी के निधन पर सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही, महामंत्री शेख हुसेन, प्रबंधक ट्रस्टी टी.आर.एन. प्रभु, सर्वोदय जगत के संपादक अशोक मोती, सर्व सेवा संघ प्रकाशन के संयोजक अरविन्द अंजुम ने गहरी संवेदना व्यक्त की। **–स.ज. प्रतिनिधि**

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

'बा'

जुलू विद्रोह और कस्तूरबा

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं।–संपा.

मोहनदास ने इसी बीच एक ऐसा निर्णय लिया जो उनको और कस्तूरबा को सीधे प्रभावित करने वाला था, आगे जीवन में वे ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे। यह जद्दोजहद उनके मन में काफी समय से चल रही थी। यह बात उन्होंने कस्तूरबा से नहीं कही थी। बयाबानों की पवित्र शांति में पैदल चलते हुए दूरगामी जुलू करालों (बस्तियों) के बीच मिले विध्वंसों के जो चित्र मोहनदास के सामने आये थे, उनसे उनके सामने विचित्र उद्घाटन हुए थे। सशस्त्र सेना की हिंसा और मनुष्य के यौन-प्रवृत्तियों के बीच गहरा नाता है। एरिकसन ने अपनी पुस्तक 'गांधीज ट्रूथ' में इस ओर संकेत किया है कि काली लाशों पर गोरों के द्वारा किये गये अत्याचार और शोषण ने, गांधी के मन में परपीड़न भरी कामुकता ओर बचपन से जो उन्होंने स्त्रियों के प्रति पुरुषों का यौन उत्पीड़न अनुभव किया था, दोनों के बीच समानता थी। कहीं न कहीं यह सब सोचते हुए उनका ध्यान कस्तूरबा की ओर गया—उन्होंने इच्छा पूर्ति और शारीरिक संतुष्टि की अपेक्षा की थी, कहीं उनकी इसी अतिरिक्त आसक्ति के कारण ही वह इतनी कमजोर और अस्वस्थ तो नहीं रहती? जब हरिलाल और मणिलाल गर्भ में आये थे तो वे घोर कामासक्ति में डूबे थे, वासना असीमित थी। रामदास और देवदास का जन्म तो सर्वाधिक कष्टदाई था। देवदास के जन्म के समय तो कस्तूर ने कहा भी था कि मैं ही उसका जिम्मेदार हूं। क्या हरिलाल जिसने इतनी कम उम्र में गुलाब से विवाह किया यही गलती नहीं दोहरायेगा जो मैंने की? वे इन सवालों से पिछले कई सालों से जूझ रहे थे कि अपने होने का और जीवन का अर्थ क्या है? उनका अंतर-द्वंद्व अपने दायित्वों व उच्च प्रतिबद्धताओं के बीच न होकर, अपने भौतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के बीच था?

अगर जीवन का उद्देश्य आध्यात्मिक जागृति था तो वे भौतिक सुख पर अपना अधिकार खो चुके थे। भौतिक जीवन का एक और पक्ष था, जिसे उन्हें छोड़ना था। उन्हें शारीरिक सुखों से असंपृक्तता यानी इच्छा-मुक्ति प्राप्त करनी थी जो हिन्दू-ग्रंथों के अनुसार मनुष्य को जीवन में ही कर्म मुक्ति का सुख देता है, और बाद में, जीवन में ही, अलौकिक आनंद की आशा बांधाता है। उन्हें लगने लगा था कि अगर बच्चों को पालने में लगा रहूंगा तो मैं एक वाक्य में यही कह सकता हूं कि मैं दोनों, भौतिक और आध्यात्मिक जीवन को एक साथ नहीं जी सकता। संकल्प से ही सेवा की अनंत संभावनाएं खुलेंगी।

तथाकथित युद्ध से लौटकर उन्हें अपनी पत्नी से इस निर्णय के बारे में बताना था कि उन्होंने जीवनपर्यंत ब्रह्मचर्य पालन का प्रण किया है यानी यौन जीवन को त्याग दिया है। उनका यह निर्णय कस्तूरबा को ही प्रभावित करता था। उनके लिए कस्तूरबा का सामना करना कठिन था। उन्होंने सर्वप्रथम मगनलाल, छगनलाल और एलबर्ट वेस्ट से चर्चा की।

कस्तूरबा ने पति की बात ध्यान से सुनी। हालांकि उन्होंने पहले कभी इस बात की चर्चा नहीं की थी। कस्तूरबा ने एक ही वाक्य कहा, 'मुझे कोई आपत्ति नहीं।' उनके मानसिक उहापोह को वह पहले से समझ रही थी। दूसरे तीसरे बच्चे के जन्म के बाद दबी जबान से उन्होंने कस्तूरबा से कहा भी था, 'तुम नहीं, मैं ही अपने से हार जाता हूं।'

कस्तूरबा ने कथित जुलू विद्रोह से लौटी सहायता की टुकड़ी को मोहनदास की पसंदीदा पूरनपूरी की दावत देने का निश्चय किया। जब मोहनदास ने कस्तूरबा को आटा गूंदते और पूरनपूरी भरने के लिए भराव

तैयार करते देखा तो बच्चों को बुलाया, 'चलो, आज तुम्हारी बा से प्रतिस्पर्धा करते हैं, तुम्हारी बा खिलाने में बाजी मारती है या हम खाने वाले जीतते हैं।'

मणिलाल तब तेरह साल का था, वह तत्काल बोला, 'चलो बापू, बा को हराते हैं, बड़ा मजा आयेगा।'

कस्तूरबा ने सुन लिया। वह प्यार से बोली, 'चलो, मैं तुम सबको अपनी बराबरी करने की चुनौती देती हूं।'

मुकाबला शुरू हो गया। कस्तूरबा ने खूब सिकी हुई पूरनपूरी परस कर अपनी तत्परता साबित करनी शुरू कर दी। मणिलाल, रामदास और देवदास कुछ देर तक तो डटे रहे फिर भाग खड़े हुए। हालांकि मणिलाल अच्छा खाऊ था। बाकी सब लोग खाकर जा चुके थे। बाद में बापू जमे रहे थे। वे हार नहीं मान रहे थे। वे तब तक खाते रहे जब तक आटा खत्म नहीं हो गया। मोहनदास ने कस्तूरबा से कहा, 'अब तुम हार मान लो।'

मोहनदास ने देखा, कस्तूरबा आटा गूंद रही है। उन्होंने लंबी सांस ली, लंबा सा चेहरा बनाया और खाने की तैयारी में लग गये। कस्तूरबा ने उनकी ओर देखकर कहा, 'एक स्त्री अपने पति को कभी भूखा उठने नहीं दे सकती, पति भले ही छोड़ दे।'

मोहनदास के पास कोई दूसरा रास्ता नहीं बचा था। बोले, 'ठीक है, तुम जीती मैं हारा।'

कस्तूरबा हंसकर बोली, 'याद रखना, मैं कभी नहीं थकूंगी...' उसकी आंखों में प्यार और वेदना साथ-साथ थे। दोनों हंस पड़े। उसने आंखें पोंछ लीं।

लियो टाल्सटाय ने ब्रह्मचारी रहने की घोषणा की थी। काउन्टेस पर टाल्सटाय के निर्णय का विपरीत प्रभाव पड़ा था। वह हिस्टीरिकल हो गयी थी। अपने आपको मारने पर उतारू हो गयी थी। पति के त्याग और आदर्शों का साथ नहीं दे पायी थी। कस्तूरबा संस्कारों की दृष्टि से भिन्न थी। पति और पत्नी का परस्पर विश्वास एक दूसरे को समझने में सबसे अधिक सहायक होते हैं। यौन संबंध को लेकर कस्तूर और मोहनदास के संबंधों में असहजता नहीं आयी थी। जब मोहनदास ने घोषणा की कि हमारे परस्पर संबंध पति-पत्नी के नहीं रहेंगे तो किसने बदले हुए संबंधों को कैसे लिया, यह किसी ने नहीं जाना।

मोहनदास अंग्रेजों के जुलू विद्रोह नाटक के बाद चंद सप्ताह ही फीनिक्स में रहे। फिर तुरंत ही जोहान्सबर्ग के लिए निकल पड़े। सरकारी गजट में, काफी समय से चर्चा में चल रहे 'एसियटिक लॉ अमेंडमेंट आर्डिनेंस' छपा था। वह अमेंडमेंट चंद चीनियों समेत सभी भारतीयों पर लागू होता था। स्वाभाविक है असली निशाने पर भारतीय थे। पहले तो मोहनदास को लगा, वह भारतीयों के प्रति नफरत के सिवाय कुछ नहीं। लेकिन जब इंडियन ओपिनियन के लिए उसका गुजराती में अनुवाद करने बैठे तो समझ में आया कि भारतीयों पर कितनी भारी मुसीबत आने वाली है। उसके अनुसार औरतों, मर्दों और आठ साल की उम्र से ज्यादा बच्चों के लिए पंजीकरण अनिवार्य होगा। यह पूरे भारतीय समुदाय के लिए अपमान की बात थी। अगर इस अध्यादेश के सामने झुक गये और पास हो जाने दिया तो बरबादी ही है। अगले रोज उन्होंने भारतीय समुदाय के सम्मानित लोगों को आमंत्रित किया। उन्होंने अध्यादेश की शब्दशः व्याख्या की। हबीब साहब ने, जो समाज के सम्मानित व्यक्ति थे, नाराजगी से कहा, 'अगर कोई अफसर मेरे घर में मेरी बेगम और बच्चों की उँगलियों के छापे या पंजीकरण के लिए आया तो मैं उसे गोली से उड़ा दूंगा। बाद में जो होगा सो देखा जायेगा।' मोहनदास समझाते हुए बोले, 'मैं भी मानता हूं कि ऐसे अपमान से बेहतर मर जाना है। हमें शांत रहकर इस बिल का विरोध करना होगा। अगर यह बिल पास हो गया तो दूसरे देशों में भी जहां भारतीय मजदूर हैं, इसकी नकल में अध्यादेश पास होने लगेंगे। हमारी जिम्मेदारी है कि हम इसे यहीं पर रोक दें।' वे रुककर बोले, 'यह सवाल ट्रांसवाल में रहने वाले पंद्रह हजार भारतीयों का ही नहीं दक्षिण अफ्रीका में रह रहे पूरे भारतीय समुदाय का है।'

ओल्र्ड एम्पायर थियेटर में 11 सितंबर, 1906 की दोपहर 2 बजे इस मुद्दे पर एक जनसभा आयोजित की गयी। तीन हजार लोग सम्मिलित हुए। तिल रखने की जगह नहीं बची थी। लोगों में उत्तेजना थी। एक के बाद एक वक्ता बोलते जा रहे थे। प्रस्ताव रखा गया। हबीब साहब का रुख बदला नहीं था। उन्होंने कहा, 'मैं अल्लाह को हाजिर नाजिर मानकर कहता हूं, मैं इस काले कानून के सामने नहीं झुकूंगा।' उन्होंने सब लोगों से भी शपथ लेने की अपील की। लोगों में जोश था। सरकार भी चौंक गयी, यह क्या होने वाला है। सरकार ने अनेक ज्यादतियां की थीं। ऐसी एकजुटता पहले कभी नहीं देखी थी। जब 21 मार्च 1906 को विधान सभा की बैठक प्रिटोरिया में हुई तो इंग्लैंड की नकल पर अध्यादेश पारित हो गया। बस विरोध का फल यह हुआ कि औरतों के रजिस्ट्रेशन का प्रावधान निकाल दिया गया था।

उनका फल यह हुआ कि मोहनदास ने इस मनमानी के खिलाफ लड़ाई का एक अहिंसक आयुद्ध सिद्ध कर लिया। इस आयुद्ध का नाम 'सत्याग्रह' रखा गया। दरअसल उन्होंने अपने अखबार के माध्यम से अपने आंदोलन के लिए उपयुक्त नाम के लिए सुझाव मांगे थे। मगनलाल ने 'सदाग्रह' सुझाया था। गांधी ने उसी को 'सत्याग्रह' में बदल दिया था। 'सत्याग्रह' का जन्म ट्रांसवाल की भूमि पर हुआ। उसका पहला परीक्षण होना अभी बाकी था।

...क्रमशः अगले अंक में

उन्नाव की घृणास्पद घटना तथा साम्प्रदायिकता के विरुद्ध देशभर में उपवास एवं जुलूस

सर्वोदय एवं संपूर्ण क्रांति विचारधारा से जुड़े गांधीजनों ने कठुआ और उन्नाव की घृणास्पद घटना तथा सांप्रदायिकता के विरुद्ध पूरे देश में उपवास और जुलूस का कार्यक्रम आयोजित किया है।

17 अप्रैल 2018 को मुम्बई सर्वोदय मंडल के आहाते में आयोजित उपवास के अतिरिक्त महाराष्ट्र में पनवल, पुणे, भिवंडी, बारामती, नागपुर, सतारा, वर्धा आदि जगहों पर भी सुबह 8 बजे से उपवास शुरू हुआ। उपवास पर बैठने वालों में सुरेखा ठाकुर, कलकत्ता विश्वविद्यालय की सेवानिवृत्त कुलपति (रायपुर में), मंदा सातपुते (लंदन में), 78 वर्षीय मनोहर ठाकरे (डाम्बीवली में), अरविन्द अंजुम-वाराणसी, विभूति विक्रम-इलाहाबाद, पत्रकार सिद्धेश्वर डुकरे आदि के नाम उपवास पर बैठने वालों में उल्लेखनीय है। मुम्बई में राज्य सभा सदस्य कुमार केतकर तथा महाराष्ट्र विधान परिषद सदस्या विद्याताई चौहान ने उपवास स्थल पर आकर उपवास के प्रति अपना समर्थन व्यक्त किया। स्वतंत्रता सेनानी व समाजवादी नेता डॉ. जी. जी. पारिख की उपस्थिति में संध्या 5 बजे उपवास समाप्त हुआ। साथी हेमाताई, बजरंग, गणेश तथा सूरज आदि ने गीत गाकर और नारे लगाकर उपवास स्थल उत्साहित बनाये रखा।

ज्ञातव्य है कि सत्याग्रह शताब्दी संवाद यात्रा 5 अप्रैल से पश्चिम चम्पारण के भितिहरवा गांधी आश्रम से शुरू हुई जो

खेती, किसानी, शिक्षा, पानी सहित देश में साम्प्रदायिकता एवं बलात्कार आदि की घटनाओं पर संवाद कर रही है। इस संवाद यात्रा द्वारा पूर्वी चम्पारण के पिपराकोठी स्थित गांधी प्रतिमा के समक्ष 17 अप्रैल को एक दिन का उपवास किया गया। इसमें हेमंत, रमन कुमार, पंकज, अरुणदास, प्रो. प्रकाश, शाहिद कमाल व अन्य साथी शामिल हुए।

पटना में भी देश में हो रहे साम्प्रदायिक विवाद, दलित अत्याचार तथा बलात्कार जैसी घटनाओं के विरोध में आवाज उठायी गयी है। *'हम बिहार के लोग'* नामक एक पर्चा बांटते हुए लोग गांधी मैदान से डाक बंगला चौराहा तक जुलूस लेकर आये तथा सरकार और प्रशासन को पर्चा पढ़कर सुनाया। उपस्थित लोगों ने सद्भावना के नारे लगाये। डॉ. दिवाकर ने पर्चा पढ़ा। उपस्थित लोगों में डॉ. डी. एम. दिवाकर, ध्रुवनारायण-सुनीता, नवेन्दु, निवेदिता, डॉ. शकिल, अशोक मोती, नैय्यर फातमी, रूपेश-नीलू, राजीव, रंजीत, शाहिद कमाल आदि थे।

इसी तरह बलात्कार की घटनाओं के विरोध में 13 अप्रैल को गांधी मैदान, पटना से एक कैंडिल मार्च में शहीद भगत सिंह मूर्ति कारगिल चौक पर काफी संख्या में लोग उपस्थित होकर एक सभा आयोजित की तथा 17 अप्रैल को बिहार वोमेन नेटवर्क एवं लोकपरिषद की पहल पर गांधी मैदान स्थित गांधी मूर्ति के समक्ष 72 घंटे का सामूहिक उपवास आयोजित हुआ। उपवास पर बैठने वालों में नीलू, उर्मीला बिन्दु, प्रतिभा, रीना, प्रभाकर, महताब आलम, सूर्यकांत और आकांक्षा सम्मिलित थे। उपवास स्थल पर डॉ. एम. एन. कर्ण, कल्पना-अशोक मोती, रूपेश-नीलू, नैय्यर फातमी, नवेन्दु, पूर्व मंत्री श्याम रजक, निवेदिता, ऋत्विज, खुशबू, शाजीना, शिखा, राजीव, नुपूर, शुभांषु आदि के साथ भारी संख्या में पटना के प्रबुद्ध नागरिक उपस्थित थे। **–जयंत दिवाण/अशोक मोती**

हृषीकेश पाठक की दो कविताएं

❑ हृषीकेश पाठक

(एक)

समस्या हो कश्मीर की
या फिर पंजाब की
असम या गोरखालैण्ड की
सब आपकी मेहरबानी है नेताजी!
आप ही उलझा रहे हैं
समस्याओं में देश को
आसानी से सुझला लेते हो
अपनी कमाई की गुत्थी को,
एक वे नेताजी थे
देश पर शहीद होकर
देश को आजाद किये
एक आप हैं
जाति और मज़हब में झोंककर
देश को बर्बाद किये,
कभी हिन्दू बनकर
भड़काया हिन्दुओं को
मुसलमान बनकर मुसलमानों को
विखण्डन की साजिश तो
आपने ऐसी रची की
अखण्डता का नारा भी
कोरा नारा रह गया,
धर्म और जाति के नाम पर
क्षेत्रीयता का प्रभुत्व हो गया,
पहले अनेकता में एकता थी
अब अनेकता का ही साम्राज्य है,
धन्य हैं आप नेताजी!
कभी विधायक बने
कभी सांसद बने
मंत्री, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री बने
आप अपनी तरक्की के साथ
देश की उन्नति जोड़ लिये,
आप कभी फटेहाल थे
आज आप शिखर पर हैं
कारों का काफिला है
अट्टालिकाओं का अम्बार है
लक्ष्मी पर आपका अधिकार है
कुबेर आपके द्वार पर चौकीदार हैं,
खद्दर के लिबास में
शैतानी चोला छुपाने का
अजीब अंदाज है आपके पास
करोड़ों का न्यारा-वारा करने में
उस्ताद हैं आप
न उड़नदस्ता
न निगरानी
न छापा का डर है
दो पैसा लेने वाला कर्मचारी
सलाखों के अंदर है,
आप प्रजातंत्र का सही उपयोग करते हैं
प्रजा को प्रताड़ित कर
तंत्र का उपभोग करते हैं,
आई. ए. एस., आई. पी. एस. बनना
सब के सब बेकार हैं
मात्र एक बार मंत्री बन जाने की देर है
सात पुश्तों का बेड़ा पार है,
धन्य हैं हमारे नेताजी
समाज के तथाकथित प्रणेताजी
आपसे कब छुटकारा मिलेगा
इस देश को?
कब हम बहाल कर पायेंगे?
गांधी, लोहिया, जयप्रकाश के
परिवेश को?

(दो)

जिन्दा कंकाल लाठी के सहारे
गलियारे में आता है,
दया-दृष्टि पाने के लिए
फटी झोली फैलाता है।
एक स्वयं ही नहीं रहा,
दो बच्चे आगे-पीछे हैं
आंखें सवा इंच भीतर हैं
पेट, पीठ के पीछे है।
द्वार-द्वार घूम-घूम
आधी रोटी वह पाता है,
बच्चों को फुसलाकर
खुदा भरोसे सो जाता है।
सुबह अभी हुई भी नहीं
बच्चों का रोना शुरू हुआ,
जठराग्नि का मारा बूढ़ा
सोच-सोच रोते जाता है।
तभी पास की नाली में
दृग फेंकी पत्तल पर पड़ता,
चमक चेहरा दामिनी-सा
जाता दौड़ पत्तल के पास,
पलक चाटते जूठी पत्तल,
बैठे कुत्ते ने देख लिया,
दौड़ छीन हाथ से पत्तल
बूढ़े का कलेजा काट लिया।
बिना सहारे बच्चे रोते
दो नयन पुतलियां उलट गयीं,
देख रही हैं आसमान को
मानो, प्रतीक्षा है समाजवाद की! ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।